उपक्रमणिका

श्रावन की एकादशी है। आकाश में इधर उधर बरसने लायक एकाध छोटे छोटे बादल दिखाई दे जाते हैं। एकादशी के चन्द्र अपनी फीकी चाँदनी फैला रहे हैं। नीचे चन्द्र की चाँदनी से जगमगाती हुई गंगा की धारा बही जा रही है। वर्षा के पानी से चंचला गंगा का पानी मटमैला हो गया है किन्तु फिर भी भरीपूरी गंगा की जल क्रीड़ा बड़ी ही मनोहर है। फीकी चाँदनी में दिखाई दे रहा है कि गंगा का एक किनारा तो भूमि में मनमाना फैला पड़ा है, दूसरे किनारे पर ऊंचे ऊंचे पहाड़ हैं जिनसे टकराती हुई कल कल शब्द करती हुई धारा बह रही है। बीच बीच में मट्टी की ढूहें और पत्थर की चट्टानें खिसक खिसककर धमाके के साथ गिरती हैं जिससे गंगा का पानी और भी गँदला हो जाता है।

विन्ध्याक्षेत्र से एक छोटी डोंगी बनारस की ओर बही चली आ रही है। इस नाव में छः सात युवक सवार हैं। श्रावणी एकादशी के समय जगज्जननी विन्ध्यवासिनी के दर्शन के लिये बहुत भीड़ जमा होती है। भारत के बहुतेरे शहरों से इस पुण्य समय में कितने ही हिन्दू देवी का दर्शन कर अपने को पवित्र बनाने आते हैं। हमारी इस नाव के यात्री लोग भी दर्शन के लिये ही गये थे। कुछ पुण्य लेने नहीं—एकादशी के शृंगार के दिन भीड़ का तमाशा देखने गये थे। आज वह लोग विन्ध्याचल

से बनारस अपने एक मित्र के घर चले आ रहे हैं। बनारस पहुँचने के बाद लोग अपने अपने घर जायँगे।

नाव में तरह तरह की बातें और युवकों जैसी हँसी-दिल्लगी चल रही है। इन युवकों में केवल एक युवक चुपचाप बैठा है।

एक युवक ने कहा,—"आज बहुत बचे, चलने के समय जब आँधी आई, तभी मेरी जान सूख गई थी! इसके बाद जब मल्लाहों ने कहा कि नाव सँभालना मुशकिल है, तब तो मैं अपने को निरा मुर्दा ही समझने लग गया था। सोचने लगा, कि स्त्री के मन में कष्ट पहुँचा चले आने का यही फल है। तुम लोगों को क्या? तुम लोग तो तैरना जानते हो। मरने के लिये हम और राजेश्वर दो ही थे।"

और एक ने कहा,—"बहुत ठीक! किन्तु हम लोग बचते तो तुम दोनों को भी बचाते ही, तुम लोगों को यों ही छोड़ न जाते।"

"कहना जितना सहज है, काम करना उतना सहज नहीं। तब सोचते कि—आत्मानंसततं रक्षेत्।"

दूसरे बोले,—"जाने भी दो; जब मरे ही नहीं, तो बहस कैसी? कुछ तुम्हारा स्त्री विधवा तो हुई नहीं; तब इन बातों से क्या वास्ता? अब यह बताओ, तुम अपनी स्त्री को कैसा मनोकष्ट दे आये हो।"

एक ने कहा,—"वाह यार! तू सचमुच पक्का वकील होगा। इतनी बातें हो गईं, पर असल बात भूलने न पाई।"

दूसरे ने कहा,—"तेरी समझ पर तो पत्थर पड़े हैं। अरे

इनकी स्त्री ने मिलते हुए जाने की आज्ञा दी थी, सो तुम लोगों के मारे मुलाकात भी न होने पाई।"

तीसरे ने पूछा,—"तुम्हारी स्त्री कहाँ है ?"

"ऐसा बेवकूफ तो मैंने देखा ही नहीं। अरे मेरे घर होती तो मैं मिल के ही न आया होता! इस समय मेरी स्त्री अपने पिता के घर अर्थात् असार खलु संसार के सार ससुर मन्दिर में है।"

इसी समय एक ने कहा,—"चुप चुप; जरा सुनो तो सही।"

इस छोटी नाव के पास एक बड़ा बजरा आ पहुँचा था। शायद कोई शौकीन चरित्रहीन धनी कुछ वेश्याओं के साथ विन्ध्यक्षेत्र से लौट रहे थे। उस बजरे से मधुर स्वर में किसी रमणी के गले से निकला संगीत उस सन्नाटे में स्वरों का साम्राज्य बाँध रहा था। सारङ्गी रमणी के स्वर से अपना स्वर मिला रही थी, तबला धीरे धीरे ठुमक रहा था। गाना हो रहा था।

गान समाप्त होते ही इस छोटी डोंगी से एक युवक ललकार उठा,—

"वही तबला व सारङ्गी जो पहले थी वो अब भी है।
वही रफ्तार बेढङ्गी जो पहले थी वो अब भी है॥"

अन्यान्य नवयुवकों ने बहुत धत् धुत के बाद उसे चुप कराया। किन्तु इस बेतुके और बेतालेपन को शायद बजरे वालों ने सुन लिया। गानेवाले अपना आधा ही गाना गाकर चुप हो रहे, बजरे में बैठे मर्द लोग इन युवकों की छेड़ पर हंस पड़े। पुरुषों की गम्भीर हंसी और स्त्रियों की कोमल खिलखिलाहट साफ सुनाई दी।

इसके बाद फिर सारङ्गी ने स्वर मिलाया और गाना होने लगा। अबकी किसी दूसरी स्त्री ने गाना शुरू किया, जिसकी आवाज पहली से भी अच्छी थी।

युवकों में एक ने मल्लाह से कहा—"जरा जल्दी जल्दी नाव बढ़ाये चल।"

किन्तु देखते देखते धारा में पाल के सहारे जानेवाली वह बड़ी नाव दूर निकल गई। गाने का स्वर धीरे धीरे गायब होने लगा। अन्त में वह स्वर गंगा की लहरों के साथ दूर निकल गया केवल जल का कल-कल शब्द और डाँड़ो का छप छप बाकी रहा

एक युवक बहुत ही गम्भीर भाव से नाव के एक किनारे बैठा था; वह बहुत ही चिढ़कर अपने साथियों की ओर देख रहा था। एक ने उससे कहा,—'क्यों राजेश्वर! बिलकुल उल्लू की तरह चुपचाप बैठे हो?"

युवक ने उत्तर दिया,—"यदि मैं जानता, कि तुम लोग ऐसा बन्दर पन करोगे, तो कभी साथ न आता।"

"क्या हुआ क्या?"

"उस नाव के गाने को सुनकर दिल्लगी उड़ाने की क्या जरूरत थी? चरित्रहीनाओं के साथ दिल्लगी करना भी पाप है।"

"यह तो हमने पहले ही कह दिया कि द्वारका प्रसाद ने बुरा काम किया।"

द्वारका प्रसाद ने धीरे से अपने बगल में बैठे एक युवक से कहा,—"कैसी मुशकिल है! नाव भी इनके जान प्रार्थना-मन्दिर

है। सभी बातों में पवित्रता की जरूरत है। इसी से तो मैं इसके साथ कहीं जाता नहीं।"

द्वारकाप्रसाद की बगल में बैठे युवक ने कहा,—"उसका नाम न लो। बूढ़ा हो चला, तब भी विवाह नहीं करता। उसके लिये सब धान बाईस पसेरी है। आज कल कलियुग में धर्म्म के तीन पैर रह गये हैं, यदि सब लोग धर्म्म करने लगें, तो अधर्म्म बेचारा कहाँ जाय? हम में से कोई वकील है, कोई रोजगारी है, उसके जैसा धर्म्म हम लोग कैसे बना सकते हैं? जब तक राजेश्वर विवाह न करेगा, तब तक इसके सिर से पवित्रता का भूत न उतरेगा।"

इसके बाद उसने राजेश्वर की ओर देख कर कहा,—"क्यों राजे! अब विवाह करके गृहस्थ कब बनोगे?"

"इस देश में विवाह?"

"क्यों, यह देश किससे खराब है?"

"इस देश के विवाह में दूल्हा-दूल्हन की राय नहीं ली जाती। इस देश में बाल्य-विवाह, शिशु-विवाह का रिवाज है। इस देश में स्त्री शिक्षा पाप माना जाता है, इस देश में स्त्री की स्वाधीनता के नाम पर लोग काँप उठते हैं, इस देश में विधवा-विवाह मना है पर मर्द लोग आकाश के तारों की तरह अनगिनती विवाह कर डालते हैं, ऐसे देश के मनुष्य भी कहीं मनुष्य हो सकते हैं?

"इस देश के मनुष्य, मनुष्य नहीं तो और क्या हैं?"

"मनुष्य होते तो बाल्य-विवाह का रिवाज न जाने कब

बन्द हो गया होता। मनुष्य होते तो स्त्री शिक्षा का प्रचार करते; स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार देते। मनुष्य होते तो दूल्हे-दूल्हन की राय लेकर विवाह करते। मनुष्य होते, तो विधवा के मर्मभेदी विलाप को कभी बर्दाश्त न करते।"

कहते कहते राजेश्वर की आँखों में आँसू आ गये।

राजेश्वर की बातें सुन द्वारका प्रसाद हँसते हँसते अपने बगल के साथी पर गिर पड़े। साथी ने धीरे से हाथ दबा उसे चुप रहने का इशारा किया। राजेश्वर ने इन दोनों के काम पर ध्यान नहीं दिया।

एक ने राजेश्वर से पूछा,—"अब तुम क्या करना चाहते हो?"

राजेश्वर ने कहा,—"मैं समाज का संस्कार चाहता हूँ।"

"इससे क्या होगा?"

"इससे देश में सब तरह की उन्नति होगी।"

और एक ने कहा,—"अच्छा, अभी न सही, कभी होगा ही। अब जरा देशी भाषा में बोलो; सच बताओ कि विवाह करोगे या नहीं?"

"मैं बाल्य-विवाह न करूँगा। यदि कभी किसी विधवा का दुःख दूर कर सकूँ, यदि मैं समझूँ कि वह मुझे चाहती है, तो मैं उसी से विवाह करूँगा। नहीं तो मेरे विवाह करने न करने में सन्देह है।"

द्वारका प्रसाद ने धीरे से अपने बगल में बैठे युवक से कहा, "बाल्य-विवाह का क्या मतलब? राजेश्वर की उम्र तो तीस वर्ष के करीब है,—क्या अभी यह बालक ही है?

और एक कुछ कहना चाहता था, ऐसे समय नाव किनारे लग गई। एक मल्लाह ने कहा,—"पहुँच गये, उतरिये।"

तब सब लोग अपने अपने जूते खोजने लगे।

इन युवकों के पास कोई विशेष सामान नहीं था। केवल कई छोटे छोटे बेग थे जिसे दो आदमियों ने उठा लिया। इसके बाद अपने अपने छाते और छड़ी लेकर सब लोग नीचे उतरे। मल्लाह को किराया देकर सब लोग शहर की ओर चले।

सीढियाँ तय कर युवक लोग सड़क पर पहुँचे। राह में कूड़े के ऊपर एक कुत्ता सोया था, एक युवक की छड़ी की चोट से वह चिल्लाता हुआ भागा। सब हँस पड़े। उस सन्नाटे में इन सब की हँसी भूतों की हँसी जान पड़ी।

केवल राजेश्वर ने कहा,—"उस जीव को कष्ट देने से क्या फल मिला?"

इस बात पर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। युवक गण तेजी के साथ एक ओर चल दिये; किसी ने किसी से बात भी नहीं की।

—

अधःपतन

प्रथम परिच्छेद

वर और कन्या

उपक्रमणिका में लिखी हुई घटना के बाद दो वर्ष बीत गये। संसार में नित्य नई घटनायें हुआ करती हैं; इन दो वर्षों के भीतर भी बहुतेरी घटनायें हो गई हैं, उन नौकायात्री युवकों के जीवन में भी बहुत कुछ हेर फेर हो गया है; काम में फँस सबके सब देश विदेश में छिटक पड़े हैं।

सन्ध्या का समय है, बनारस की एक गली में राजेश्वर के चाचा के घर एक कमरे में दो युवक बैठे हुए हैं, इनमें एक राजेश्वर और दूसरा द्वारका प्रसाद है। अभी कुल बीस दिन हुए राजेश्वर का विवाह हुआ है। यह विधवा-विवाह नहीं, कुमारी विवाह है। इस विवाह में राजेश्वर समाज की उन्नति या विधवा का दुःख दूर कर नहीं सके। किन्तु लड़की देख कर विवाह किया है। इस विवाह की कहानी यों है—

कानपुर से लौटने पर एक वर्ष बाद राजेश्वर के बड़े भाई की मृत्यु हो गई। राजेश्वर की मा के हृदय में यह बहुत कड़ी चोट पहुँची। उनका मन बहलाने के लिये राजेश्वर उन्हें ले तीर्थ यात्रा को निकल गये। किसी तीर्थ में और एक भले घराने से

उनकी भेंट हो गई; यह घराने का घराना तीर्थयात्रा के लिए निकला था। इसी में एक कन्या भी थी। कन्या उम्र में कुछ बड़ी थी; देखने में वैसी खूबसूरत नहीं तो बहुत भद्दी भी न थी। असल बात यह कि क्वाँरे राजेश्वर की निगाह में यह लड़की अच्छी ही जँची। कन्या के माता पिता को कन्या आप ही भारी हो रही थी; उन दोनों ने राजेश्वर की माता से विवाह के बारे में बात चीत की। विवाह बन गया। अपने एक पुत्र की मृत्यु के बाद से ही राजेश्वर की माता विवाह के लिए बहुत जोर दे रही थीं। आखिर माता के आँसुओं ने राजेश्वर के मन को मोम बना दिया! लड़की भी राजेश्वर को बदसूरत नहीं जान पड़ी। आखिर चौदह वर्ष की कन्या के पैरों पर राजेश्वर समाज संस्कार की इच्छा और विधवा के दुःख दलन की कामना अर्पण कर देने के लिए तैयार हो गये।

तीर्थयात्रा से लौटने के बाद कन्या के पिता ने राजेश्वर के चाचा से इस विवाह के बारे में बात छेड़ दी। विवाह ठीक हो गया। इसके बाद एक दिन राजेश्वर अपने चाचा के घर से मौर पहन कर चले और दूसरे दिन नथ पहने हुई एक दूल्हन को लेकर लौट आये।

दूल्हन को लेकर राजेश्वर बड़ी प्रसन्नता के साथ घर लौटे; मानों बड़े कष्ट से शाहजादी को लेकर अलादीन अपने घर आया हो।

   

द्वारका प्रसाद ने कहा,—"अब क्या कहते हो ? विवाह के बाद का जीवन कैसा जान पड़ता है ?"

राजेश्वर ने कहा,—"बहुत अच्छा जान पड़ता है। अब समझ रहा हूँ, कि कुछ दिन पहले विवाह क्यों न किया ?"

"ठीक है ठीक है।"

राजेश्वर ने कोई जवाब नहीं दिया। द्वारकाप्रसाद ने फिर कहा—"स्त्री कैसी है ? क्या अपने बाप के यहाँ जाना चाहती है ?"

'हाँ, तीन चार दिन हुए गई है।"

"विवाह होते ही विदाई ? लड़की छोटी है न, इसी से।"

"क्यों ? स्त्री तो स्त्री ही ठहरी—इसमें छोटी बड़ी कैसी ?"

"अभी ऐसा ही जान पड़ेगा। नया प्रेम पियानो बाजा के समान मनोहर होता है। इसके बाद लड़के की बीमारी, लड़की का विवाह; यह सभी लीलायें सवार होंगी। तब कान के पास जय का डङ्का बजने लगेगा।"

"बातों में तुम्हें कोई न पायेगा।"

"क्यों नहीं, हम सब भोग जो चुके हैं, पुराने पापी हैं, हम लोग सब समझते हैं। पुराने ही मल्लाह समझ सकते हैं कि कहाँ रेती और कहाँ भँवर है।"

"ठीक है भाई !"

"इसके बाद यह बताओ, कि डाकखाने की आमदनी बढ़ा रहे हो या नहीं ?"

"डाकखाने की आमदनी कैसी ?"

"अर्थात् खूब शीघ्रता के साथ चिट्ठियाँ भेज रहे हो या नहीं?"

इस प्रश्न ने राजेश्वर को शर्मिन्दा कर दिया। उसने कहा—"हाँ, अभी एक पत्र लिखा है। क्या पत्र लिखना उचित नहीं है?"

"यह कौन कहता है? हम लोग भी पहले पहल बहुतेरी चिट्ठियाँ लिख चुके हैं। अब तो लिखने के लिये कोई बात ही नहीं सूझती, उस समय लिखते समय कलम रुकता ही न था। यह कहो कि तुमने कितना बड़ा खत लिख मारा? आठ पेज या सोलह?"

"नहीं जी, इतना बड़ा नहीं।"

"चलो खैरियत है।"

इस प्रकार बहुतेरी बातों के बाद द्वारकाप्रसाद उठकर चल दिये। रास्ते भर द्वारकाप्रसाद राजेश्वर की बातें सोचते चले गये। उनके प्रसन्न चेहरे पर मुस्कुराहट खेलने लगी। उसने सोचा,—कैसा चित्त बदलता है! यह वही राजेश्वर है! समाज-संस्कार का इच्छा और देशोन्नति की कामना इस समय स्त्री के चरणों में अर्पित है। मैं इतने भङ्म्बे का पक्षपाती नहीं। बहुत कम उम्र में मेरा विवाह हुआ, नये प्रेम का नशा कुछ दिनों तक बड़े चाव से बढ़ाया गया; इसके बाद, बस! गृहस्थ बनकर सोलहो आने गृहस्थी में फँसना पड़ा। जीवन कोई स्वप्न तो है नहीं जिस पर इतने दिन तक विचार करने के बाद इस उम्र में विवाह किया जाय। सोचते ही विचारते हृदय रोग-

स्थान वन गया, जिसमें जल रूपी रस पड़ते ही सूख गया—जरासा पानी वरसने से कहीं रेगिस्तान भी शीतल हुआ है? अब हम लोग नई नई पत्नी के आदर्श की कल्पना करते हैं; किन्तु पाते हैं पुरानी। जैसे जैसे उम्र वढ़ती जाती है, वैसे वैसे नई का आदर्श नस नस में वैठा जाता है। इस समय तो राजेश्वर भाई का नशा खूब जमा है; इसमें खुमारी न आये, तभी मङ्गल है।

उस दिन रात को लेटे लेटे राजेश्वर के हृदय-पट पर एक वालिका का चित्र खिंच गया। रंग गोरा-गोरा, वनावट वुरी नहीं। राजेश्वर को वह चित्र वहुत ही भला जान पड़ता था।

राजेश्वर सोचने लगे,—"अपनी अकेली कोठरी में वैठी वालिका सोच रही है? मेरा ध्यान कर रही है? जितना मैं उसे चाहता हूँ, उतना ही वह वालिका भी मुझे चाहती है? शायद नहीं। (मन ने आप ही अपने को समझाया) यदि अभी नहीं, तो आगे चल कर चाहे जो हो। अभी वहुत छोटी है।" इसके वाद राजेश्वर ने फिर सोचना शुरू किया—'कई दिन वाद मैं अपनी ससुराल जाऊँगा; इस समाचार को पाकर वह मन में वहुत प्रसन्न हुई होगी। उसे देखने की आशा से जैसे मेरा मन आनन्दित हो रहा है, वैसे ही मुझे देखने के लिये उसे भी आनन्द होता होगा? क्यों न होगा?"

इसी प्रकार राजेश्वर अपनी स्त्री की दो दिन की मुलाकात के वारे में मन ही मन तर्क-वितर्क करने लगे। वालिका की सव वातों में ही उन्हें सरलता और प्रेम दिखाई देने लगा। इच्छा

होती तो उन सब बातों के बहुतेरे अर्थ किये जा सकते थे। किन्तु राजेश्वर अपने मन के मुताबिक अर्थ लगाने लगे।— "उस बालिका का हृदय प्रेम से कितना परिपूर्ण है। वह अमृत-भरा घड़ा मेरा है। आज मैं कितना सुखी हूँ। यदि विवाह करने में इतना सुख है, तो मैंने इससे पहले विवाह क्यों नहीं किया? किन्तु पहले विवाह कर लेता, तो इस उर्वशी को कहाँ पाता?"

राजेश्वर इसी प्रकार खयाली पुलाव पकाते रहे। नये विवाह या नये जीवन में प्रवेश करने पर पहले ऐसे ही बहुतेरे स्वप्न और आशाओं की सृष्टि होती है। वह स्वप्न या वह आशायें बहुत सुखकर भी होती हैं। मनुष्य का हृदय अपनी इच्छा से स्वर्ग या नरक की सृष्टि कर सकता है; किन्तु जब तक स्वर्ग की सृष्टि हो सकती है; तब तक कोई नरक की सृष्टि क्यों करने लगा?

दूसरा परिच्छेद

बगल की कोठरी

जिस रात करवटें बदलते हुए राजेश्वर तरह तरह के सुख-स्वप्न देख रहे थे, उसी रात बगल की कोठरी में और भी एक युवक को नींद नहीं आ रही थी; यह राजेश्वर का भतीजा माधव प्रसाद है।

बन्द कोठरी में जलते हुए चिराग की रोशनी में माधव न

जाने किस चिन्ता में डूबा है। धीरे धीरे उठ कर उसने एक सन्दूक खोला; सन्दूक से बहुतेरी चिट्ठियों का एक बंडल निकाला। पत्रों की लिखावट कच्ची है,—जान पड़ता है कि किसी बालिका के लिखे हैं। एक एक पत्र खोल कर माधव पढ़ने लगा—उसकी बड़ी बड़ी आँखों में आँसू भर आया; अन्त में एक पत्र पर टपाटप दो बूँद आँसू टपक पड़े। हथेली से आँसू पोंछ वह फिर पत्र पढ़ने लगा। अन्त में वह सब पत्र पढ़ गया। इसके बाद उसके हृदय से वेदना के साथ एक ठंढी साँस निकल कर हवा में मिल गई।

पत्रों को बटोर कर माधव ने सन्दूक में बन्द कर दिया। इसके बाद वह चुपचाप आकर बिछौने पर लेट गया। बिछौने पर पड़े पड़े वह सोचने लगा,—"यह क्या हुआ? वह भूली हुई बात फिर हृदय में जाग उठी! वह बुझी हुई आग फिर क्यों जल उठी? बहुत दिन की बात,—बहुत दिन की भूली हुई याद; आज फिर एकाएक क्यों नई हो गई? अब क्या करूँ; चित्त बहुत चंचल हो रहा है।"

सोचते सोचते युवक उठ कर खिड़की के पास चला गया। कोठरी की वायु न गर्म ही थी और न ठंढी; फिर भी चिन्ता के मारे युवक के माथे पर मोती जैसे पसीने के बूँद झलक रहे थे। युवक ने खिड़की खोल दी; इसके बाद एक कुरसी खींच कर खिड़की के पास ही बैठ गया। सामने ही सड़क है, किन्तु इतनी रात को सड़क से कोई जाता आता नहीं। सड़क के दूसरे किनारे के मकान की एक कोठरी में चिराग जल रहा है।

उस कोठरी में बैठा कोई छात्र अपना सबक याद कर रहा है। बीच बीच में कोई घोड़ा गाड़ी सन्नाटे को तोड़ती हुई निकल जाती है।

खिड़की के सामने बैठ कर युवक न जाने क्या सोचने लगा। वह बार बार अपनी आँख और चेहरे पर हाथ फेरने लगा। युवक की आँखों में मानो बीती घटनाओं का अभिनय होने लगा। उसके हृदय पर एक चित्र खिंच गया; उसकी आँखों के आगे एक बालिका मूर्ति खड़ी हो गई। शायद बचपन के प्रेम की कोई कहानी याद आ गई।

प्रथम यौवन में कितने ही लोगों को बहुतेरी बालिकाओं के चेहरे पर एक अपूर्व माधुरी दिखाई देती है; उनकी आँखों के सामने असीम सुख के स्वप्न की झलक दिखाई देती है। वह प्रेम का अंकुर,—वह प्रेम उस समय कामनाविहीन और पवित्र होता है। उसके स्पर्श से हृदय में प्रेम का पौदा पनपता और हृदय कोमल हो जाता है। वह कामनाविहीन प्रेम उस समय कुलध्वंसी आकार धारण नहीं करता। जैसे ही उस प्रेम में कामना का प्रवेश होता है, वैसे ही वह कुलध्वंसी बन जाता है। तब भी बचपन के प्रेम की याद सहज ही मेटे नहीं मिटती। संसार की चोट से मन की उमङ्गों के बिगड़ने से पहले जब हृदय निर्मल रहता है, प्रेम नवीन होता है, उस समय प्रेम की याद सहज ही हृदय से निकाले नहीं निकलती। साफ आइने में जैसा साफ और स्पष्ट आकार दिखाई देता है, मैले आइने में वैसा नहीं दिखाई देता। नवीन हृदय का प्रेम

सहज ही नहीं भूलता। हृदय में ढूँढ़ कर देखो, बीते हुए जीवन की बहुतेरी याददाश्तों में कोई एक याद बहुत साफ दिखाई देगी, हृदय के आकाश में कोई एक तारा खूब चमकता हुआ दिखाई देगा। न जाने कितने दिन की बीती बात है, आज स्वप्न के राज्य की तरह उसकी एक धुँधली याद बनी है। कब किस बालिका की आँखों में मोहनी भाव दिखाई दिया था; उसके चेहरे पर कैसी स्वर्गीय पवित्रता दिखाई दी थी; वह आज भी भूलती न होगी। यह भी भूले न होगे, कि कब किस भाव से तुम्हारी और उसकी आँखें चार हुई थी और इसके बाद किसने आँखें नीची कर ली थीं।

ऐसे ही जो प्रेम हृदय में एक दाग दे जाता है, वह कभी भूलने को है? भूलने की बात होती तो माधव अब तक भूल गया होता। भूल सकता, तो आज उसके हृदय में इतनी वेदना न होती। उस सन्नाटी रात में उसी प्रेम के बारे में माधव चुपचाप बैठा न जाने क्या सोचता रहा।

माधव के ललाट से पसीना बहने लगा। वह बहुत देर तक बैठा चिन्ता में डूबा रहा। कहीं की घड़ी ने तीन बजाया। तब वह खिड़की बन्द कर सो रहा।

तीसरा परिच्छेद

दम्पति

शरद् ऋतु का तीसरा पहर है; आकाश में पश्चिम की ओर

सूर्य्य ढल पड़े हैं। धुवाँ फेंकती हुई डाकगाड़ी बरेली के स्टेशन पर आकर ठहर गई। लोगों के उतरने, चढ़ने, कुली बुलाने के शोर से स्टेशन गूँज उठा। कुछ बोझ उतार और कुछ लादकर सीटी देती हुई डाकगाड़ी चल दी। स्टेशन फिर सन्नाटा हो गया।

जो लोग उतरे, उनमें एक हमारे परिचित राजेश्वर हैं जो ससुराल जा रहे हैं। सारी राह राजेश्वर न जाने कितने सुख की कल्पना करते चले आ रहे हैं। उर्वशी की प्रभा उनके हृदय को रौशन किये हुई है। एक किराये की गाड़ी पर सवार हो राजेश्वर ससुराल की ओर चले।

कुछ ही देर में गाड़ी ठीक स्थान पर पहुँच गई। तब राजेश्वर हड्डी हड्डी निकले घोड़ों से जुती, विचित्र खड़खड़ाहट की आवाज करने वाली, धूल से लतपत गाड़ी से उतरे। मकान के सामने ही छोटा सा मैदान है; जान पड़ता है कि कभी वहाँ फूलों का बाग लगा था या बाग लगाने की कोशिश की गई थी। इस समय एक किनारे दो पेड़ पारिजात के रह गये हैं। मकान के सामने का हिस्सा एक मंजिला और पीछे का हिस्सा दो मंजिला है। सामने ही बैठक का कमरा है; उसी कमरे में पहुँच कर राजेश्वर ने अपने ससुर को बड़े अदब से सलाम किया। घबराहट के साथ आशीर्वाद देते हुए ससुर ने दामाद को बैठाया। इसके बाद ससुर जी सबका कुशल पूछने लगे, इसी समय दामाद के आने का समाचार पा राजेश्वर के दोनों साले भी वहाँ आ पहुँचे। छोटे साले की उम्र चार वर्ष की होगी

धोती-कुरता पहनने से से उसे चिढ़ थी। आज दामाद के शुभागमन से उसकी मा ने उसे जबर्दस्ती धोती पहना दी थी। किन्तु जनान खाने से बाहर आते आते कमर के साथ झगड़ा कर धोती जमीन में लटकने लगी थी। बालक के कमरे में आते ही धोती एक दम लटक कर जमीन पर लेट रही। धोती में पैर फँसने के कारण लड़का धम से गिर पड़ा। राजेश्वर ने उसे उठा लिया। बालक गम्भीर होकर बैठ गया रोया नहीं। राजेश्वर ने सोचा,—कैसा शान्त लड़का है।

इसके बाद जलपान के लिये जनान खाने से बुलाहट आई राजेश्वर भीतर गये। उनका हृदय जरा तेजी के साथ उछलने लगा। राजेश्वर जलपान करने बैठे। चार अंगुल का घूँघट निकाल उनकी सास सामने बैठ कर "यह खा लो, उसे चखो, अभी क्या खाया।" कहती हुई खिलाने के लिये जिद करती गईं। समझदार लड़कों की तरह सिर झुका कर राजेश्वर ने भोजन के साथ अच्छा व्यवहार किया। तब भी सास कहने लगीं,—"कुछ भी न खाया।" राजेश्वर ने सोचा,—कितना आदर है।

बाहर आने के समय राजेश्वर ने देखा, कि मानो अधखुले दरवाजे के पास से कोई हट गया। चाहे हटने वाली उस मकान की कोई दासी या पड़ोसन ही क्यो न रही हो; किन्तु राजेश्वर ने सोचा, कि निश्चय उर्वशी ही थी। जरूर उसी की प्यारी आँखों ने दर्शन किया है। उस बालिका के हृदय में कितना प्रेम है!

राजेस्वर फिर बाहरी कमरे में आकर बैठ गये। इस समय

सूर्य्य पूरी तरह से डूब चुके हैं—तब भी सूर्य की आखिरी किरणों से प्रकाश है। केवल एक चमकते हुए तारे की बिन्दी लगा कर लज्जा से शिर झुकाये नई बहू की तरह सन्ध्या धीरे धीरे जा रही है। समीप ही के किसी शिवालय में पूजा का नौबत बज रहा है।

राजेश्वर को ऐसा जान पड़ने लगा, मानो आज रात ही न होगी। धीरे धीरे कुछ अँधेरा हुआ। पूजा की कोठरी में आरती होने लगी; धूप की सुगन्धि घर में फैल पड़ी।

\+ \+ \+ \+

उस रात सोने की कोठरी में पहुँच कर राजेश्वर ने देखा, कि उर्वशी चारपाई पर चुपचाप सोई हुई है। धीरे धीरे मधुर स्वर में राजेश्वर ने बुलाया,—"उर्वशी" किन्तु वह कुछ न बोली। राजेश्वर ने धीरे धीरे चारपाई पर पड़े उसके हाथ को अपने हाथ में ले लिया, तब भी उर्वशी न हिली। राजेश्वर समझे कि वह सो गई है। उन्होंने धीरे से उर्वशी के हाथ को छोड़ दिया, अब उर्वशी की बारी आई। उर्वशी समझ गई, राजेश्वर ने उसे सोई जान छोड़ दिया है। राजेश्वर उर्वशी की चाल को समझ नहीं सके। ऐसी चालबाजियों का अभ्यास न होने के कारण राजेश्वर समझ नहीं सके कि स्वामी के दर्शन की आशा से रमणी के नींद आने की जगह जागते रहना ही स्वाभाविक है। उर्वशी कुछ हिली; राजेश्वर समझे, कि वह लज्जा के मारे नहीं बोली,—कैसी कोमल लज्जा है!

राजेश्वर ने फिर आवाज दी,—"उर्वशी!"

इस बार उर्वशी स्वामी की ओर घूमी।

राजेश्वर ने पूछा,—"कैसी हो ?"

बहुत ही मधुर स्वर में उर्वशी ने जवाब दिया,—"उतनी अच्छी नहीं।"

"क्यों, तबीयत खराब है ?"

उर्वशी ने कहा,—"तुम इतने दिन आये क्यों नहीं ?"

सरलचित्त राजेश्वर का हृदय उछल पड़ा; वह समझे कि शायद न देख सकने के कारण ही उर्वशी की तबीयत खराब हो गई। जैसे चन्द्र को देख कर समुद्र का हृदय उछल पड़ता है, वैसे ही उर्वशी की बातों से राजेश्वर का हृदय उछल पड़ा। उसकी बातों से राजेश्वर मोहित हो गये। शायद जगत में सीधापन ही सब से अधिक सुख है।

इसके बाद उर्वशी ने राजेश्वर से पूछा,—"तुम कैसे हो ?"

अब राजेश्वर बड़ी विपद् में पड़े। उनका शरीर बहुत अच्छा था, बीमारी का कोई भी लक्षण मौजूद न था। किन्तु उनके विरह से उर्वशी अच्छी न थी; जितना प्रेम बालिका में है, क्या इनमें उतना भी नहीं है ? कुछ इधर-उधर कर उन्होंने कहा,—"एक तरह से अच्छी ही है।"

राजेश्वर थोड़ा खिसक आये, इसके बाद और थोड़ा खिसक आये—पास आ कर उन्होंने उर्वशी का चुम्बन किया। राजेश्वर का हृदय जोर जोर से धड़कने लगा क्योंकि उनके लिये यह काम बिलकुल ही नवीन था। जो लोग अपवित्र होंठों पर अपवित्र चुम्बन लेने की शिक्षा पाते हैं, राजेश्वर उन लोगों में

नहीं। पत्नी के अधर का चुम्बन करने के समय राजेश्वर काँप उठे।

इसके बाद राजेश्वर ने अपनी छाती से पत्नी का शिर लगा लिया। प्रेम के उस कानन में उर्वशी ने क्या खयाल किया, यह नहीं मालूम। किन्तु तब भी उसका हृदय चंचल हो उठा; यह नहीं मालूम कि प्रेम के आनन्द से, या पहले की बातों को याद करके।

इसके बाद दोनों ही चुप रहे। कुछ देर बाद राजेश्वर ने पत्नी से कहा—"बहुत रात गई—सो जाओ।"

उर्वशी उठी; राजेश्वर भी उठे। उर्वशी ने उठकर अपने कोमल हाथों को राजेश्वर के गले में डाल चुम्बन किया। पत्नी के प्रथम चुम्बन से राजेश्वर की नस नस आनन्द से काँप उठी। मानों उनके सारे शरीर में बिजली दौड़ गई। आनन्द की मदिरा ने उन्हें मतवाला बना दिया। राजेश्वर ने भी दोनों हाथों से जकड़ पत्नी को हृदय से लगा लिया और मारे चुम्बनों के उसके चेहरे को धो दिया। उर्वशी ने सहज ही स्वामी के हृदय पर अधिकार कर लिया।

जो सहज ही जीता जा सकता है, उसके जीतने के लिये हृदय में प्रबल वासना तो होती है, किन्तु उत्तेजना नहीं होती। इस लिये उसे जीत लेते पर सफलता की असीम तृप्ति और आनन्द भी नहीं होता। जो सबल और अजीत है, उसी को जीतने के लिये हृदय में प्रबल वासना उत्पन्न होती है और उसे पाने या जीतने से बड़ा आनन्द भी आता है। जो जितने दुःख

से मिलता है, वह उतना ही प्रिय जान पड़ता है। राजेश्वर के हृदय को जीतने में उर्वशी को अधिक कोशिश करने की जरूरत नहीं होती। उसने राजेश्वर के हृदय को अनायास ही जीत लिया। क्या राजेश्वर का ऐसा हृदय उसके लिये अधिक प्रिय होगा ?

नहीं मालूम कि उर्वशी के लिये यह हृदय अधिक प्रिय होगा या नहीं किन्तु उस हृदय से राजेश्वर को बहुत तृप्ति हुई, केवल तृप्ति ही नहीं, खूब आनन्द भी आया। उर्वशी के प्रेम में पग राजेश्वर के हृदय ने कहा कि "यह स्वर्ग सुख है !!"

चौथा परिच्छेद

गृहस्थी

सारनाथ के समीप के गाँव में एक पुराना मकान है। इसकी एक बाहरी कोठरी में कई आदमी बैठे हैं। इन्हीं लोगों में एक राजेश्वर भी हैं। राजेश्वर के पैर पकड़ एक खेतिहर रो रहा है। कोठरी में दो चौकियाँ बिछी हैं; दोनों ही पर रोशनाई के दाग से भरी दरियाँ बिछी हैं। उस बिस्तर पर दो सन्दूक लिये दो आदमी बैठे हैं, दूसरी चौकी पर कई मुनीम बही खाते फैलाये लिख रहे हैं, यह जमींदारी कचहरी है।

राजेश्वर यहाँ कहाँ ? संसार की गति ही ऐसी है। आज यहाँ, तो कल वहाँ। विवाह के बाद कुछ दिन सुख-स्वप्न में बीत गये, घर से ससुराल और ससुराल से घर की हेराफेरी

में कई महीने बीत गये। इन कई महीनों में उर्वशी की याद के अलावा और कोई काम न था। इसके बाद राजेश्वर ने देख कि जीवन स्वप्न नहीं है। स्त्री के लिये जगत् में जितनी सुन्द चीजें संग्रह करनी पड़ती हैं, उनके लिये रुपये की जरूरत है पहले रुपये को राजेश्वर बहुत ही घृणा की दृष्टि से देखते किन्तु अब घृणा की जगह आकांक्षा और ममता ने दखल जमा है। राजेश्वर की कुछ पैतृक जमींदारी थी। इतने दिन त उन्होंने जमींदारी की ओर ध्यान भी नहीं दिया; अब ध्या देना जरूरी हो पड़ा। जैसे अशान्त लड़के बहुत दिन तक म मानी चाल चलने के उपरान्त अन्त में शान्त हो पिता के घ लौट आते हैं, वैसे ही राजेश्वर भी अपनी सम्पत्ति देखने भाल के लिये मानो घर लौटे। जमींदारों पर उन्हें बड़ी चिढ़ थ क्योंकि जमींदार लोग प्रजापीड़क, अत्याचारी, कुकर्मी इत्या इत्यादि होते हैं। उन्हें यह समझ न थी कि देश में वर्तमा जमींदार यदि न हों, तो प्रजा उजड़ जा सकती है। जमींदार के सैकड़ों अच्छे से अच्छे गुण उनकी नजर में आते ही न थे कहीं एकाध जमींदार के अत्याचार की कहानी सुन वे समस्त जमींदारों पर चिढ़ गये थे। किन्तु अपनी जमींदारी में पहुँच कर उन्होंने देखा कि प्रजा का प्रणाम करना बुरा नहीं जान पड़ता; प्रजा का दिया सन्मान भी कोई वस्तु है। यह तो पहली अवस्था हुई, दूसरी अवस्था में राजेश्वर ने देखा, कि प्रजा को सताने से कुछ ऊपरी आमदनी भी हो जाती है। रुपये की जरूरत है ही, इस लिये वे बीच बीच में प्रजा को सताने भी

लगे। अब राजेश्वर का चित्त कहने लगा, पिता थोड़ी और जमींदारी बढ़ा जाते तो अच्छा था।

विवाह के बाद गृहस्थ बनने पर राजेश्वर एक राह छोड़ दूसरी राह पर आ गये। वह गुजरा जीवन और पुराने विचार स्वप्न की तरह बदल गये। यह गृहस्थी ऐसी ही चीज है।

आज एक किसान राजेश्वर का पैर पकड़ कर रो रहा है। बात इतनी ही है कि उसका एक बैल किसी दूसरे किसान के खेत में घुस गया था। इसी अपराध पर राजेश्वर ने उस पर दस रुपये जुर्माना लगाया है। इसी से वह उनके पैर पकड़ कर रो रहा है। उसके आँसुओं को देख कर भी राजेश्वर की आज्ञा नहीं टली, तब वह अभागा लाचार हो बैल बेच कर रुपये संग्रह करने गया। उस अभागे के हृदय की रुलाई पर किसी ने ध्यान न दिया। हल में जुतने वाले दो बैलों में एक बेच डालने से इस साल उसकी खेती हो न सकेगी; खेत में कुछ न उपजने से खाने का भी ठिकाना न रहेगा, जमींदार की मालगुजारी तो बाद की बात है। लाचार अपने भूखे परिवार को साथ ले उसे यह गाँव छोड़ दूसरे गाँव में जाना पड़ेगा। पैतृक घर में उसे मरने के लिये भी जगह न मिलेगी। भारत के बहुतेरे खेतिहर ऐसे हैं जो एक ही समय के भोजन पर गुजर करते हैं, उस पर फालतू रुपये वसूल किये जाने से उनके जीवन का भी ठिकाना नहीं रहता। इस बारे में खेतिहर भी बिलकुल निर्दोष नहीं। यह सच है; वे जमीन में पूरी तरह से खाद नहीं देते, ठीक तरह से सिंचाई का बन्दोबस्त नहीं करते, लाचार बर-

सात में देर होने से मारे पड़ते हैं। किन्तु इस दोष का मूल कारण उनकी दरिद्रता है। जमीन की उन्नति करने, सिंचाई और अच्छे बैल खरीदने के लिये रुपये की जरूरत है—दरिद्रों के पास रुपये कहाँ!

करीब ग्यारह बजे राजेश्वर कचहरी से उठे। उठते ही उनके शरीर में तेल मला जाने लगा। इसके बाद धीरे धीरे बाबू साहब कुआँ पर नहाने चले।

उस दिन घर लौटने के समय राजेश्वर को खयाल आया कि मैं यह सब क्या कर रहा हूँ? मेरा वह आदर्श जीवन कहाँ चला गया? मेरे इस जीवन का आरम्भ कब से हुआ?—विवाह के बाद से! इसका कारण कौन है? उर्वशी! राजेश्वर का हृदय काँप उठा; उनके चेहरे पर क्षण भर के लिये उदासी छा गई।

धीरे धीरे राजेश्वर भाग्य को मानने लग गये। वे सोचने लगे,—"मेरे भाग्य में ही ऐसा है। चाहे मैं जहाँ जाऊँ, भाग्य मेरे साथ है। यह गृहस्थी ही मेरे लिये कर्मक्षेत्र है; ईश्वर ने ही मुझे यहाँ भेजा है। मैं कौन हूँ? क्या हूँ? मैं कर ही क्या सकता हूँ? वे मेरे हृदय में बैठे हैं; वे जैसी आज्ञा देते हैं वैसा ही करता हूँ। मैं तो पेंच से चलनेवाली कठपुतली के समान हूँ; अपनी इच्छा से मैं क्या कर सकता हूँ?"

पाँचवाँ परिच्छेद

अबला का बल

उस दिन भोजन के बाद दिन में आराम करने के समय से कुछ पहले जनानखाने में अपने सोने की कोठरी में पहुँच राजेश्वर ने देखा कि उर्वशी कोई चिट्ठी लिख रही है। जूता उतार दबे पैर वे उर्वशी के पीछे जा खड़े हुए। पहली ही लाइन में लिखा था,—"प्रियतम!" राजेश्वर चौंक पड़े। उसी समय पीछे पलट उर्वशी ने देखा कि राजेश्वर खड़े हैं। उसका चेहरा पीला पड़ गया, दोनों आँखें चमक उठीं; इसके बाद ही उसने चिट्ठी को फाड़ पुरज़े पुरज़े कर फेंक दिया। हवा के झोंके से कागज की धज्जियाँ सारी कोठरी में फैल पड़ीं। उर्वशी उठ के खड़ी हो गई।

बहुत ही कठोर स्वर में राजेश्वर ने पूछा,—"यह चिट्ठी किसे लिख रही थीं?"

एक बार चेहरा सीधा कर उर्वशी ने उनकी ओर देखा। राजेश्वर की आँखें लाल हो रही हैं। जीवन में यह पहली बार राजेश्वर ने अपनी पत्नी पर क्रोध किया है। जिस सन्देह और जिस अविश्वास के कारण वे मन ही मन बहुत ही भयानक यातना सह रहे थे, क्या उसे उर्वशी समझ नहीं रही थी? किन्तु फिर भी वह चुप रह गई।

राजेश्वर ने फिर पूछा,—"बोलो, किसे खत लिख रही थीं?"

उर्वशी ने कुछ जवाब नहीं दिया। उसने आगे कुछ न

तीसरे पहर तक बड़े कष्ट से उर्वशी को मनाकर राजेश्वर बाहर गये। उस समय न तो उनके मनमें क्रोध ही था और न सन्देह ही।

राजेश्वर के जाते ही उर्वशी के चेहरे पर मुस्कुराहट छागई। कोठरी का दरवाजा बन्द कर उर्वशी खूब हंसी। इसके बाद वह आपही बड़ बड़ा कर कहने लगी—"पुरुष ऐसे ही बेवकूफ होते हैं। स्त्री की बुद्धि के आगे क्या कभी मर्दों की बुद्धि चल सकती है !! स्त्री के कौशल से पुरुष सदा ही पराजित हुआ करते हैं। गंगा हमेशा महेश के शिर पर सवार रहती हैं; काली के पैरों तले शिव पड़े रहते हैं।"

उर्वशी कुछ देर तक न जाने क्या सोचती रही। इसके बाद उसने फिर एक खत लिखा। चिट्ठी को लिफाफे में रख पता लिख और उसी समय मजदूरनी को देकर डाक में छोड़वा दिया। क्या राजेश्वर को देख उसने जो चिट्ठी फाड़ के फेंक दी थी यह वही चिट्ठी है ?

स्त्री अबला है। किन्तु अबला में जितना बल है, उतना मर्द में नहीं। अबला के बल के आगे बलवान पुरुष का बल पराजित होता है। पुरुष अपने भाग्य के साथ युद्ध कर जीत सकता है, किन्तु रमणी के प्रभाव को दूर कर नहीं सकता। क्योंकि दुर्बलता ही रमणी का बल है और उस बल के आगे जगत का कोई बल काम में नहीं आता। जगत में कितने ही पुरुष रमणी के लिये बुद्धि गंवा कर उसके दास बन बैठे हैं। कितने ही लोग रमणी के लिये कितनी ही भूल कर बैठते हैं; पाप करते हैं, आत्म

हत्या करते हैं। इस जगत में रमणी के मोह के पीछे कितनी ही प्रतिभा नष्ट होती है, बहुतेरा धन खराब जाता है, यश नष्ट हो जाता है— यदि वह प्रतिभा बचती, तो जगत का कितना भला होता, उस धन से कितने गरीबों का दुःख दूर होता, उस यश से कितने लोगों का जीवन उज्जल होता। रमणी के लिये कितने ही लोग कुसमय मर जाते हैं, कितने ही सुख के भवन में दुःख की आग लगा बैठते हैं, संसार का कितना अनिष्ट कर बैठते हैं।

छठाँ परिच्छेद

बहुत दिन बाद

फागुन महीने की शाम है। धीरे धीरे दक्खिनी हवा चल रही है। दालान में एक कुर्सी पर बैठे राजेश्वर अपनी प्रजा से मालगुजारी के बारे में बात चीत कर रहे हैं। मकान के सामने ही एक टेसू का पेड़ फूलों से लाल हो रहा है। दक्खिनी हवा के झोंके से फूलों की मीठी मीठी खुशबू फैल रही है।

राजेश्वर बातें कर रहे हैं, ऐसे समय एक गाड़ी सामने आकर खड़ी हुई। एक युवक ने गाड़ी से उतर कर राजेश्वर को प्रणाम किया। राजेश्वर ने कुशल पूछकर उसे आदर से बैठाया। यह उनका भतीजा माधव है।

कुछ देर बाद वहाँ से उठ कर माधव जनान खाने में चला गया। उस समय उसकी दादी राजेश्वर की मां चौकी पर बैठी

माला जप रही थीं। माधव ने बूढ़ी को प्रणाम किया और कुशल मङ्गल पूछने के बाद फिर बाहर चला गया।

माधव के चले जाने पर बूढ़ी ने माला रख कर बहू को आवाज दी,—"बहू।"

पास ही रसोईघर है, उर्वशी वहीं थी। किन्तु उसे सास की आवाज सुनाई न दी। मावध की आवाज सुनने के बाद से उर्वशी का चित्त न जाने कहाँ उड़ गया था।

सास ने फिर आवाज दी,—"बहू।"

इस बार आवाज उर्वशी के कान तक पहुँची। उसने जवाब भी दिया।

बूढ़ी ने कहा,—"बड़े घर की लड़कियाँ सात बार बुलाये बिना आवाज ही नहीं देतीं। रसोई जरा ज्यादा बनाना माधव भी खायगा।"

इसके बाद बूढ़ी फिर माला फेरने लगी। रात साढ़े नौ बजे राजेश्वर और माधव भोजन के लिये जनाना खाने में आये। बूढ़ी बैठ कर माधव को खाने के लिये जिद करने और खिलाने लगीं। किन्तु आज का भोजन खाने के लायक ही नहीं है। उर्वशी ने किसी में अधिक नमक डाल दिया है और किसी में नमक डालना ही भूल गई है। खाने में हिचकिचाते देख बुढ़िया बोल उठी,—"आज कल के लड़के केवल मांस पसन्द करते हैं। तुम सब की बातें ही निराली है।"

माधव ने हँस दिया। राजेश्वर भी मुस्कुरा कर चुप रहे।

माधव की आवाज सुनने के बाद से उर्वशी का चित्त न जाने

कैसा हो गया था। उस रात सोने की कोठरी में जा राजेश्वर सो रहे, किन्तु उर्वशी को नींद नहीं आई। वह सोचने लगी—यह मैंने क्या किया। सोचा था कि यह प्रेम हृदय में ही छिपा रह जायगा; यदि भूल न जाऊंगी तो और किसी पर प्रकट भी न होने दूंगी। किन्तु हाय मैंने उसे फिर क्यों देखा। देखते ही पहिले की याद हृदय में जाग उठी। किन्तु जब पहले पहल देखा तब उसे पाने का कोई उपाय न था। मैं अपने अशान्त हृदयको शान्ति दे न सकी; अपने को भूलकर मैंने फिर उससे बात चीत आरम्भ करदी। और—ये जो पुरुष विश्वास करके मेरे पास सोये हुये हैं, इनके प्रेम का क्या मैं यही बदला दे रही हूँ ?

उर्वशी ने सोते हुये अपने स्वामी के मुंह की ओर देखा। उसका हृदय बेचैन हो उठा। उसी समय नींद में राजेश्वर ने करवट बदली। उर्वशीके मन में सोये हुए स्वामी की ओर से घृणा उत्पन्न हुई।

जिस पर सच्चा प्रेम नहीं होता उसे प्रेम की दृष्टि से देखना भी बहुत कष्टकर होता है। उस कष्ट की वजह धीरे धीरे मन में उसकी ओर से घृणा पैदा होने लगती है। जब भरपूर घृणा हो जाती है, तब रमणी स्वामी के पास रहने की जगह मरने में ही अपनी भलाई समझती है। उर्वशी के मन में भी स्वामी की ओर से ऐसी ही घृणा पैदा हो रही थी। उर्वशी चारपाई से उतर भूमि में जाकर सो रही।

जैसे एक ओर राजेश्वर की ओर से उसके हृदय में घृणा उत्पन्न हो रही थी, वैसे ही एक के लिये प्रबल प्रेम भी बढ़ रहा

था। पाल में हवा लगने से जैसे नाव डगमगा उठती है, वैसे ही माधव के प्रेम से उसका हृदय भी डगमगा उठा। उसने सोचा कि जैसे कमल कीचड़ में फँस कर और चारो ओर के पानी रूपी बाधाओं को दूर कर जल के ऊपर आने पर फूल के रूप में खिलता है, वैसे उन दोना का प्रेम बीते हुए जमाने के कीचड़ में फँस बहुतेरी बाधाओं को दूर कर अब खिलेगा। किन्तु क्या ऐसा होने से ही वह खुशी हो जायगी? इसकी भी आशा नहीं। कलङ्क का टीका इस जीवन में मिटाये न मिटेगा। इसके अतिरिक्त वह अपने सुख के लिये माधव की होने वाली उन्नति और आशाओं को भी नष्ट कर डालेगी; उसके जीवन को दुःखमय बना डालेगी। उर्वशी को भी अपने पराये, मित्र और स्नेही सभी परित्याग कर देंगे। लोग उस पर घृणा करेंगे; संक्रामक रोग से बीमार रोगी की तरह लोग उसे छोड़ देंगे। किन्तु प्रेम का वह सुख—उसके आगे जगत में और भी कुछ है?"

जिसका मिलना कठिन है, उसी के पाने की इच्छा प्रबल होती है। इसी से आज उर्वशी भी माधव के पाने की इच्छा कर रही है। यह प्रेम दूर से उसे बड़ा ही मनोहर जान पड़ता था। उर्वशी समझी, कि माधव का पाना ही उसके लिये स्वर्ग सुख है। उसके मन ने कहा,—आग को भी कोई आँचल से ढाँक कर रख सकता है? तब इस प्रेम को मैं कैसे छिपा सकती हूँ? इस प्रेम की आशा से मन अलसा जाता है; यह भी कहीं छिपाये से छिप सकता है?

अभागी इस प्रकार लालसा की धार में पड़ डूब गई। उसने इस पर एक वार भी अच्छी तरह विचार नहीं किया। उस रात उसे नींद नहीं आई।

वसन्त के खिले फूलों की पराग को चारो ओर उड़ानेवाली हवा के साथ सवेरे की किरण के फैलते ही अपने मन में दुश्चिन्ताओं को लिये वह उस कोठरी से बाहर निकली।

सातवां परिच्छेद

स्वर्ग या नरक ?

उर्वशी का सारा दिन वेचैनी के साथ बीता। भोजन के बाद दोपहर को सोनेवाली कोठरी में पहुंच उसने ऐसी चेष्टा की जिसमें रामेश्वर उसकी वेचैनी को समझ न सके।

राजेश्वर ने देखा कि आज उर्वशी का चेहरा बहुत प्रसन्न है। किन्तु वे ध्यानपूर्वक यह न देख सके कि उनकी यह प्रसन्नता स्वाभाविक नहीं बनावटी है। उस समय गृहस्थ राजेश्वर इस चिन्ता में थे कि किसी खेतिहर के खेत को किस तरह बेदखल कर लें। इधर बहुत दिनों से स्त्री के साथ रहते रहते जब उनके हृदय में नये प्रेम का उतना खिचाव भी नहीं था। इसी से स्त्री की सब बातों पर अब वे जियादा ध्यान दिया नहीं करते थे।

उर्वशी से दो चार दिल्लगी छेड़, बातों ही बातों में प्रेम से उसके कोमल गाल में पथाथ हलका थप्पड़ मार वे सो गये।

राजेश्वर के सो जाने पर उर्वशी एक खुली खिड़की में जाके बैठ गई। कुछ ही दूर पर एक तालाब था—दोपहर की धूप के कारण तालाब पर सन्नाटा था। तालाब के किनारे एक वृक्ष के नीचे दो गौवें बैठी पागुर कर रही थीं। तालाब के दूसरे किनारे एक पलास वृक्ष खूब फूला हुआ था। उसी फूले हुए वृक्ष की एक शाखा में छिप कर कोकिल अपनी सङ्गिनी को पुकार रही थी।

खिड़की में बैठ उर्वशी न जाने क्या सोचने लगी। दोपहर में कई औरतें आईं, पानी भर के चली गईं। देखते देखते सूर्य्य पश्चिम की ओर ढल पड़े। तब भी उर्वशी अपने विचार में ही डूबी बैठी रही।

नींद से जाग कर राजेश्वर ने देखा कि उर्वशी न जाने किस चिन्ता में डूबी है। उन्होंने पूछा,—"क्या सोच रही हो?"

उर्वशी बोली,"दिन ढल गया और तुम जागे नहीं; यही सोच रही थी, कि अभी जगाऊँ या नहीं।"

"हाँ, दिन बहुत ढल गया। आज बहुत सोया; अब तक तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं?"

जूता पहन राजेश्वर बाहर चले गये। उर्वशी भी नीचे उतर गई।

आज एकादशी है; बूढ़ी सास सन्ध्या ही को आहार कर सो रही। उधर उर्वशी ने भी शीघ्र ही रसोई समाप्त की। अब भी राजेश्वर के भोजन में देर है; इस लिये उर्वशी अपनी कोठरी में चली गई। जनानखाने के दोमंजिले में केवल

दो ही कोठरियाँ हैं। एक में कपड़े गहने के ट्रंक और सन्दूक रक्खे हैं; दूसरी कोठरी उर्वशी के सोने का कमरा है। सीढ़ी से ऊपर आते ही एक छोटी छत पड़ती है, उस छत के दक्षिण और उत्तर यह दोनों कोठरियाँ पड़ती हैं। दक्षिण कोठरी के पीछे एक बड़ी खुली हुई छत है; इसके बाद बाहरी बैठक खाना है। बैठक खाने के दूसरी ओर फिर इसी बनावट की दो कोठरियाँ हैं। बैठक खाने में कोई रहता न था। इस लिये माधव ने उसी बैठक में डेरा डाला है। बैठक खाने के दूसरी ओर मकान का ठीक ऐसा ही जो हिस्सा पड़ता है, वह माधव के पिता के हिस्से में है। माधव के पिता विदेश में नौकरी करते हैं। इस लिये उनके हिस्से के मकान में ताला बन्द है, माधव ने आकर उस हिस्से का ताला खोला है। उस घर से छत तक होते हुए सीधे जनानखाने तक आने के लिये एक दरवाजा है। राजेश्वर के दादा के दो लड़के थे, एक से राजेश्वर थे और दूसरे से माधव के पिता महेश्वर। इन दोनों अर्थात् महेश्वर और राजेश्वर में सम्पत्ति का अलगाव है, किन्तु व्यवहार का अलगाव नहीं।

अपनी कोठरी में पहुँच उर्वशी चारपाई पर लेट रही। इसके बाद फिर चिन्ता में डूब गई। खिड़की की राह से उसकी कोठरी में चाँदनी आ रही थी, उसी राह से शीतल वायु भी आ रही थी। बीच बीच में कहीं से कोकिल का मधुर स्वर सुनाई दे रहा था, किन्तु उर्वशी अपनी चिन्ता में ही डूबी थी।

इसी समय दक्षिण के दरवाजे से कोई कोठरी में आया।

उर्वशी उठ खड़ी। उसके सामने माधव आकर खड़ा हो गया। आनन्द, आशङ्का और घबराहट से उर्वशी का हृदय उछलने लगा। वह कुछ भी बोल न सकी।

माधव ने कहा,—तुमने मुझे किस लिये बुलाया ?"

उर्वशी कुछ न बोली।

माधव ने फिर कहा,—"अब बीती बातों का खयाल क्यों करती हो ? उस बात के खुलने से हमारा और तुम्हारा—दोनों का सर्वनाश होगा। उन बातों को सोच कर क्यों अपना मन दुखाती हो ? अब वह सब बातें भूल जाओ।"

अब उर्वशी के मुँह से बात निकली। उसने कहा,—"भूलने की बात होती तो, भूल जाती। कैसे भूल सकती हूँ ?" यह कह उर्वशी भूमि की ओर नीची दृष्टि से देखने लगी।

माधव ने कहा,—"किन्तु भाग्य में तो और ही कुछ लिखा है; वह सब बातें स्वप्न की तरह पलट गईं; जरा सोचो तो सही।"

उर्वशी ने कहा,—"इसमें मेरा क्या दोष है ? यह हृदय तुम्हारा ही है, इसमें और किसी के लिये जरा भी स्थान नहीं। यह प्रेम का पुष्प तुम्हारे ही द्वारा खिला था; इस लिये तुम्हारा ही है। न जाने कैसे हृदय में एक को धारण कर मैं दूसरे की हो गई।"

माधव ने कहा,—"क्या किया जाय, उर्वशी!"

माधव के मुँह से पहले ही जैसे प्रेम के साथ "उर्वशी" शब्द सुन उर्वशी का हृदय चंचल हो उठा। वायु के झोंके से जलधारा में लहर आने की तरह उसका हृदय लहरा उठा।

उर्वशी से अब रहा न गया; रो पड़ी। रोते रोते उस ने कहा,—"अब इस लगी आग को मैं कैसे बुझाऊँ?"

माधव ने कहा,—"यह क्या, तुम रोती क्यों हो?"

माधव ने देखा कि अब और जोरों के साथ उर्वशी के गालों पर आँसू वह रहे हैं। उसी वहते हुये आंसू पर चांदनी आ पड़ी है। माधव उसके आंसू पोछने को आगे वढ़ा। उर्वशीके कपड़े की खुशवू उसके दिमाग तक पहुंची। उस खुशवू के साथ उसकी सुन्दरता के मद से माधव मतवाला होगया। सब विचारों को भूलकर माधव ने उर्वशी को अपनी वाहों में लपेट हृदय से लगा लिया। उसने उर्वशी के उछलते हुए हृदय को अपने हृदय से दवा दिया। उस दवाव से उर्वशी के शरीर क सारी नसें और उन नसों में दौड़ने वाला खून चंचल हो उठा। मारे आनन्द के उसका हृदय और भी उछलने लगा। इसके वाद माधव ने उर्वशी के मुंह को चूम लिया। आनन्द में आ उर्वशी भी सव भूल गई; उसी आनन्द में वह माधव के चुम्वन का वदला चुकाना भूल गई। इसके वाद वह माधव के कंधेपर सिर रख फिर रोने लगी। इसका वर्णन हो ही नहीं सकता कि उन आंसुओं में कितना सुख, कितना दुःख, कितनी आशा, कितनी निराशा, कितना आनन्द, और कितनी आशंका थी।

इसके वाद ही उर्वशी को खयाल आया कि यह क्या किया? माधव को भी खयाल आया कि यह क्या कर वैठा?

अब माधव न ठहरा, दक्षिण के दर्वाजे से छत पर जा उसने

दरवाजा बन्द कर दिया। उसी समय पश्चिम के दरवाजे से कोई धीरे से हट गया।

चारपाई पर लेटकर उर्वशी फिर रोई। इसी समय वृद्धी सास का कठोर स्वर सुन वह चैतन्य हो धीरे धीरे नीचे उतर गई।

आठवां परिच्छेद

नरक

उस रात माधव अकेला अपने बैठकखाने से उठकर बरामदे में आ बैठा। सारा नगर सोया पड़ा है। झींगुर झनकार स्वर से बोल रहे हैं—चन्द्रदेव अस्त होचुके हैं। आकाश में टुकड़े २ बादल दिखाई दे रहे हैं—बीच बीच में बिजली भी चमक उठती है। बादलों से बचे हुए तारे कहीं कहीं से झांक रहे हैं।

माधव बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करूँ? इस समुद्र में कूद कर सबको छोड़ दूं या अब भी ठीक राह पर पलट जाऊं? अब भी लौटने का समय है; किन्तु इसके बाद फिर समय न मिलेगा।

उसके हृदय में पहिले की याद जाग उठी। उठती जवानी में जब उसके पिता की नौकरी की बदली बरेली में हुई, तो पढ़ने के बहाने एक मित्र के घर उसकी एक बालिका से आंखें चार हुईं, वह पहली निगाह थी, इसके बाद उसमें खिचाव पैदा हुआ, फिर तो प्रेम खिल उठा। वह सब बातें आज स्वप्न की तरह जान

पढ़ने लगीं। समय के फेर से इसके पिता को इलाहाबाद बदली होने से दोनों फिर अलग होगये। इस जीवन में फिर दोनो की मुलाकात न होती तभी अच्छा था। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। दोनों में फिर देखा देखी होगई। दोनों की किसमत दोनों को एक ही जगह खींच लाई, तब भी दोनों में बहुत फासला रहा। यदि सुख ही मिलने को न था, तो यह सुख की छलना कैसी? पानी का लिखा सहज ही मिट जाता है, किन्तु खून का लिखा सहज ही मिटने को नहीं। पत्थर पर पड़ी हुई छाया शीघ्र ही दूर हो जाती है, किन्तु पत्थर में दाग लगा देने से वह मिट नहीं सकता।

इसी समय वायु का झोंका जोरों के साथ बहने लगा। वृक्ष की पत्तियां झूम झूमकर शोर मचाने लगीं। आकाश में मेघ गड़ गड़ शब्द से गरजने लगा। देखते देखते प्रचंड आंधी फैल पड़ी।

अब जरा उर्वशी को भी देखिये। जिस यातना से उर्वशी की वह रात बीती, उसका वर्णन करना कठिन है। उसकी चिन्ता शायद माधव की चिन्ता से भी अधिक है। माधव तो अपनी चिन्ता में ही डूबा था; किन्तु उर्वशी को अपनी चिन्ता छिपाने की चिन्ता और भी थी कहीं। राजेश्वर को मालूम न होजाय!! जैसे बाहर आंधी बह रही थी, वैसे ही उसके हृदय में भी आंधी बहने लगी। उसने सोचा—"हाय! बचपन की सब आशायँ कैसे दूर हो गईं? शरद के बादल की तरह वह सब सुख की आशायें, वह सब वासनायें कहां गायब होगईं? यह भी मेरा ही दोष है? मैंने को न

सा कुसूर किया, जिसके लिये यह दंड मिला? यही भाग्य का पलटा है?" उस रात उसकी जरा सी झपकी में भी दुःस्वप्न ने बिना सताये न छोड़ा।

दूसरे दिन राजेश्वर जमींदारी में चले गये। उस दिन माधव से फिर उर्वशी की मुलाकात हुई। मानो कोई अनजान ताकत माधव को उर्वशी के पास खींच लाई। उर्वशी फिर रोई; माधव ने भी आंख के आँसू पोछे। माधव ने कहा—"भाग्य के इतना अलगाव करने पर भी मैं फिर क्यों तुमसे मिला? अव कभी न मिलूंगा।"

उसी दिन से बूढ़ी सास का मिजाज बहुत चिड़चिड़ा हो उठा। बात बात में वे उर्वशी को झाड़ सुनाने लगी। उर्वशी अपने को बहुत संभाल कर भी न संभाल सकती थी। वह बहुत ही उदास हो गई थी। रोटी उतारने के समय खयालात ठिकाने न रहने से रोटी जल गई; सास ने इसी पर उसे अन्धी लड़की बना के छोड़ा। एक रकाबी उठाने के समय धक्के से सब बरतन झनक उठे, सास ने इसपर भी चार बातें सुना दी। सारा दिन इसी तरह बीत गया।

असल बात यह थी कि बुढ़िया बड़े क्रोध में थी। पहली रात को छत पर किसी के पैर की धमक सुन बुढ़िया भी ऊपर चढ़ गई। उस समय छत पर कोई आने वाला न था। राजेश्वर उस समय मर्दानखाने में थे, अकेली उर्वशी अपनी कोठरी में गई थी। इसी से धीरे धीरे बुढ़िया भी ऊपर पहुंची। उस समय माधव के कंधे पर सिर रख उर्वशी रो रही थी। तव से बुढ़िया

के क्रोध का कोई ठिकाना न था। यह बात साफ शब्दों में खोल कर कहने लायक नहीं। माधव घर का लड़का है, इसलिये उसकी और उर्वशी की मुलाकात बन्द कर देना भी ठीक नहीं। फिर, इससे पहले कितनी बार उर्वशी और माधव में सामना हो चुका है? बुढ़िया राजेश्वर से यह बात कह नहीं सकती। फिर भी किसी तरह इसका कुछ उपाय होना जरूरी है। लोगों को इस बात की खबर होगी तो बड़े लज्जा की बात है। इन्हीं सब चिन्ताओं से बुढ़िया बहुत घबरा उठी थी। इसीसे उसकी स्वभावतः तेज ज़ुबान और भी तेज होगई थी।

बुढ़िया की झुंझलाहट माधव पर भी उतरी। माधव सोचने लगा कि बुढ़िया का मिजाज बदल क्यों गया। मसल मशहूर है कि चोर की दाढ़ी में तिनका। इसलिए माधव को यह चिन्ता हुई कि शायद बुढिया ताड़ गई।

बुढ़िया की बकझक दिनपर दिन बढ़ने लगी। इसी तरह कई दिन बीत गये। राजेश्वर जमीदारी से लौट आये। उनके आते ही माधव इलाहाबाद चला गया।

हृदय में भयानक चिन्ता को स्थान दे उर्वशी अपने दिन काटने लगी।

नौवाँ परिच्छेद

यह क्या

धीरे धीरे दो महीने बीत गये हैं। इन दो महीनों में कोई विशेष घटना नहीं हुई। उर्वशी के प्रति उसकी सास का व्यवहार

धीरे धीरे कठोर ही होता जाता था। पहले दो चार दिन यह किच किच राजेश्वर को भी बुरी जान पड़ी। इसके बाद वह भी लापरवाह हो गये। इस समय अपनी ज़मींदारी की चिन्ताओं से ही उन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती। इस समय जैसे बने रुपया पैदा करना ही उनका धर्म होगया है। धीरे धीरे उन्हें झूठ बोलने का भी अभ्यास हो गया है। किन्तु इससे पहले देश सेवक भले आदमियों में इनका नाम हो चुका था। इसलिये इनके अत्याचार की बातें असामियों के जुबान तक ही थीं, और लोग अब तक इन्हें भला आदमी ही समझते थे। आजकल इनके हृदय में क्रोध अधिक पैदा हो गया है; कुछ कुछ लोगों से डाह भी करने लगे हैं।

वैशाख से पहले उर्वशी मायके चली गई। जाने के समय जब वह सास को प्रणाम करने लगी, तब सास ने मुँह फेर लिया था—उनके मुँह से आशीर्वाद भी न निकला।

जाने के कई दिन बाद उर्वशी के नाम एक चिट्ठी आई। मायके तो अक्सर उसके नाम चिट्ठी पत्री आया जाया करती थी, आज कल वह पिता के घर ही गई है, तब चिट्ठी कहाँ से आई? यह चिट्ठी राजेश्वर के हाथ पड़ी—एक बार राजेश्वर के मन में आया, कि चिट्ठी रख दें या उसके पिता के घर का पता लिख वापस कर दे। किन्तु इसके बाद ही उन्होंने सोचा कि स्त्री के नाम का पत्र यदि स्वामी देखे, तो हर्ज क्या है? इस लिए पत्र खोलने में उन्हें कोई आपत्ति न हुई।

पहले राजेश्वर अपने को इस तरह समझा न सकते, किन्तु आजकल वे पहले से बहुत बदल गये हैं। मनुष्य का अधःपतन

उसके हृदय के एक कोने पर ही आक्रमण नहीं करता। धीरे धीरे अधःपतन समूचे हृदय पर अधिकार जमा बैठता है। राजेश्वर की भी वही हालत हुई थी। राजेश्वर ने चिट्ठी खोल डाली।

चिट्ठी पढ़ने पर राजेश्वर पहले अपनी आंखों पर विश्वास कर न सके। उन्होंने फिर से चिट्ठी पढ़ी। सोचने लगे कि क्या यह सच है? जिसे मैं स्वर्ग समझता था, वह नरक है? इस नरक की कलुषित वायु को ही क्या मैं स्वर्ग के पारिजात से बसी शीतल मन्द वायु समझ रहा था? क्या मैं अन्धा था? अब भी तो वही सब मौजूद है; वही उर्वशी है, वही मैं हूं; तब यह क्या! क्या यह स्वप्न है?

कोई भी आदमी सहज ही विश्वास नहीं करता कि उसकी स्त्री दूसरे से प्रेम करती है और कोई स्त्री भी सहज ही विश्वास नहीं करती कि उसका पति किसी और का है, क्योंकि इस विश्वास का फल यातना है। कौन ऐसा है जो अपनी इच्छा से यातना भोगना चाहे? इसी से स्त्री के खराब होने का हाल पति को सब से पीछे मालूम होता है, इस लिये ही स्त्री पुरुष के प्रेम में भय और आशङ्का मिली रहती है। स्त्री का दोष समझने में स्वामी को देर लगती है। किन्तु स्त्री बहुत जल्द समझ जाती है। क्योंकि स्त्री स्वामी के चरित्र की जरा जरा सी बातों को देखा करती है, किन्तु पुरुषों को इतना ध्यान देने की फुरसत नहीं। अवश्य ही जो दम्पति एक दूसरे का बराबर खयाल रखते हैं, उनकी बात अलग है।

पेंच पर चलने वाली कठपुतली की तरह स्नान और भोजन

समाप्त कर राजेश्वर चारपाई पर जाकर लेट रहे। बड़ी दुश्चिन्ताओं को हृदय में भर सोचने लगे,—"क्या यह सच है?" उस दिन राजेश्व रजमीदारी का एक काम भी देख न सके; उनसे कुछ हो ही न सका।

मारे चिन्ता के उस रात राजेश्वर को नींद नहीं आई। वह घबरा उठे। छाती पर साँप बैठा कर कौन स्थिस कर रहा है? इस बात पर राजेश्वर को विश्वास नहीं होता था; अविश्वास के लिये भी कोई राह नहीं थी।

राजेश्वर ने सोचा कि शायद यह स्वप्न ही हो; किन्तु नहीं, जेब में हाथ डालते ही फिर वही चिट्ठी हाथ आई। राजेश्वर ने फिर उस चिट्ठी को पढ़ा। इसके बाद सोचने लगे,—"पत्र देखने से जान पड़ता है, कि यह किसी खत का जवाब है; तब यह चिट्ठी उर्वशी के पिता के घर क्यों नहीं गई, यहां क्यों आई? किसी ने नाहक उसके नाम जाल तो नहीं किया?" जैसे पानी में डूबते हुए मनुष्य को तैरता हुआ एक तिनका भी सहारे के रूप में दिखाई देता है, वैसे ही राजेश्वर को यह चिन्ता का एक सहारा मिला। किन्तु इसी समय मानो उसके हृदय के कोने में बैठ किसी ने उत्तर दिया,—"पत्र लिखने के समय उर्वशी अपने पिता के घर का पता लिखना भूल गई है, इसी से माधव की चिट्ठी यहाँ चली आई।"

आशा का टिमटिमाता हुआ चिराग बुझ गया। फिर राजेश्वर के हृदय में निराशा और दुश्चिन्ता का घोर अन्धकार फैल गया।

दूसरे दिन सवेरे राजेश्वर ने सोच विचार कर ठीक किया कि जैसे हो इस बात का फैसला कर डालना चाहिये। माधव इस समय भी इलाहाबाद में है; इसलिये पहले उन्हें चुपचाप इलाहाबाद चले चलना चाहिये।

दूसरे दिन राजेश्वर काम का बहाना कर इलाहाबाद चले।

दसवाँ परिच्छेद

गई रात कुछ थोड़ी वृष्टि हो गई है; सवेरे का समय है; अब भी आकाश में एकाध बादल के टुकड़े आ जा रहे हैं। ऐसे समय दो मञ्जिले एक मकान के सामने एक घोड़ागाड़ी आ खड़ी हुई। गाड़ी से उतर कर राजेश्वर ने आवाज दी,—"असबाब इस मकान में ले आओ।"

ऊपर से किसी ने आवाज पहचान कर कहा,—"कौन राजेश्वर?"

राजेश्वर ने जवाब दिया,—"जी हाँ।"

घर के मालिक नीचे उतर आये; यह राजेश्वर के चचेरे बड़े भाई महेश्वर हैं। माधव इन्हा के यहाँ रहता था। महेश्वर ने पूछा,—"सब कुशल तो है?"

राजेश्वर ने कहा,—"जी हाँ योंही भेंट मुलाकात के लिये चला आया।"

महे०। बनारस में कैसी गरमी है?

राजे०। बहुत ज्यादा भाई साहब, यहाँ का क्या हाल है?

महे०। यहां की गरमी को न पूछो। मैं तो शिमला भागने

को तय्यार था किन्तु तुम्हारी भाभी ने जाने न दिया। उसका कहना है, कि लड़की बड़ी हो गई है, उसके लिये वर देख लो तब जाओ। इसी से रुक गया।

राजे०। क्या कहीं बातचीत ठहरी है?

महे०। अभी कहीं नहीं। तब भी दो चार जगह से बात उठने की आशा है। मनोहर चाहते हैं कि मेरे छोटे भाई से विवाह कर दो, किन्तु लडका कुछ साँवला है, इसी फिक्र में पड़ा हूँ कि क्या जवाब दूं। तुम्हारी भाभी तो सांवले का नाम सुन कर भी नाक भौं चढ़ाती है।

राजे०। आखिर भाभी भी तो किसी की लड़की ही हैं, उन्हें अपने ही जैसा खयाल करना चाहिये। हम लोगों को लड़की के रङ्ग जैसा ही वर भी ढूँढ़ना चाहिये।

महे०। यदि देश के सांवले लड़के इसी तरह छांट दिये जांयगे तो उनका कहां ठिकाना लगेगा? तुम्हारी भाभी भी तो बहुत गोरी थीं, और मैं सांवला। डर लगता है कि नई रोशनी में पड़ कर कहीं तुम्हारे सामने इस बुढ़ौती में "डाइ-वोर्स" न कर बैठें।

राजे०। एक बार भाभी से भी यही बात कह डालिये।

महे०। तब तो आफत ही आ जायगी।

इस पर दोनों ही खिलखिला कर हँस पड़े।

इसी समय महेश्वर के छोटे छोटे दो लड़के और उन्हीं के साथ एक कन्या वहां आई। कन्या ने राजेश्वर को प्रणाम कर पूछा—"कब आये चाचा?"

राजेश्वर ने कहा,—"कौन चमेली ? अभी तो चला आता हूँ बेटी ।"

चमेली०। दादी, चाची सब अच्छी तरह हैं ?"

राजेश्वर—"हां सब अच्छी हैं।"

महेश्वर ने कहा—"वाह ! बाप से लड़की की ही बुद्धि तेज दिखाई देती है। मैं तो कुशल मंगल पूछना भी भूल गया।"

राजेश्वर ने कहा,—"लड़कियां इन बातों में बहुत तेज होती हैं।"

महेश्वर ने फिर वही बात उठा कर कहा—"गोपाल को तुम पहचानते हो ? वही जो हिन्दू स्कूल में तुम्हारे साथ पढ़ता था। उसका एक भांजा जमींदार है। अवश्य ही वह शहर में नहीं गांव में रहता है।"

चमेली समझ गई कि उसके विवाह की बातचीत हो रही है; इसलिये वह वहां से चली गई। अपनी बहन को जाते देख दोनों भाई भी पीछे पीछे चले गये। महेश्वर और राजेश्वर बैठ कर आपस में बातचीत करने लगे।

बहुतेरी बातों के बाद राजेश्वर ने पूछा—"आज कल माधव क्या कर रहा है ?"

महेश्वर ने कहा—"एक आफिस में उम्मीदवारी कर रहा है। बसरे में एक नौकरी ठीक होगई थी, किन्तु वहां उसे अकेले रहना पड़ता, इसी से मैंने उसे मना कर दिया।"

इसी समय अदालती पोशाक अङ्गा और पाजामा पहने हुए माधव बगल की कोठरी से निकल कर सामने आया।

राजेश्वर को देख बहुत ही अदब के साथ प्रणाम करता हुआ माधव अपने आफिस चला गया।

  

उस दिन दोपहर को राजेश्वर चुपके से माधव की कोठरी में चले गये। उस समय उस कोठरी में और कोई न था। दो मंजिले पर महेश्वर सो रहे थे; तीनों के नौकर-चाकर भी उस समय सो रहे थे।

राजेश्वर के पास तालियों का एक गुच्छा था, उससे उन्होंने माधव का कैश-बाक्स खोलने का इरादा किया। पहली चाबी बड़ी निकली; दूसरी घूम गई, किन्तु सन्दूक खुला नहीं; तीसरी चाबी खट से घूम गई और सन्दूक खुल गया। एक बार राजेश्वर का हृदय कांप गया; किन्तु फिर उन्होंने दृढ़ होकर सन्दूक खोल डाला। सोचा,—शायद इसमें उर्वशी की कोई चिट्ठी हो; किन्तु राजेश्वर यह सोच न सके कि तब क्या होगा। और यदि कोई पत्र न मिला, तब भी तो इस जीवन में सन्देह दूर होने का कोई साधन नहीं। इससे तो अच्छा था कि उर्वशी मर गई होती!

राजेश्वर ने सारा संदूक खोज डाला; कहीं भी उर्वशी का कोई पत्र दिखाई नहीं दिया। देखा कि टेबिल पर बहुत से कागज फैले पड़े हैं, किन्तु उनमें भी उर्वशी की लिखी चिट्ठी दिखाई नहीं दी। राजेश्वर ने दराज खोल कर देखा—उसमें कई चीठियाँ मिलीं किन्तु कैसा भयानक कांड है—वह सब चिट्ठियां उर्वशी के हाथ की लिखी निकलीं।

एक नहीं; सात सात चिट्ठियाँ! राजेश्वर ने उन सब चिट्ठियों को जेब में रख लिया। फिर खोजा; किन्तु अब कोई चिट्ठी न निकली। फिर सब ज्यों का त्यों रख सन्दूक को चावी बन्द कर राजेश्वर अपने लेटने की कोठरी में लौट आये। कोठरी में लेट कर वह चिट्ठियां पढ़ने चले। किन्तु पहली ही चिट्ठी में "प्रियतम" शीर्षक देख उनके हाथ से वह चिट्ठी गिर पड़ी; मानो आग का अङ्गार हाथ से छू गया।

मन स्थिर कर उन्होंने फिर चिट्ठी को उठा लिया। यह सब चीठियां उस समय की लिखी थीं जब अभी थोड़े दिन हुए माधव बनारस से इलाहाबाद आया था। पहली चिट्ठी में उर्वशी ने लिखा है—"यहां से जाने पर तुमने एक चिट्ठी भी नहीं भेजी। तुम्हारा समाचार न मिलने से मैं घबरा उठती हूं।" शायद माधव ने इस खत का कोई जवाब नहीं दिया। क्योंकि दूसरी चिट्ठी में उर्वशी ने फिर लिखा है—"मेरी चिट्ठी तुम्हें जरूर मिली होगी। मैं और कुछ नहीं चाहती, कभी कभी अपना कुशल समाचार दे दिया करो। सब बातें भूल जाती हैं; किन्तु प्रेमी की याद नहीं भूलती।" इसके बाद उसने फिर एक चिट्ठी में लिखा है—अपने हाथ से नाम और पता लिख कर छः लिफाफे भेजती हूँ—"इन लिफाफों को भेजने से पता पढ़नेवाला यह न समझेगा कि किसने चिट्ठी भेजी।" चौथे पत्र में उर्वशी ने लिखा—"तब भी तुमने जवाब न भेजा। यदि ऐसा ही व्यवहार करना था, तो एक बालिका के हृदय में प्रेम का अकुर क्यों लगाया था? जरा बीती बातों की ओर ध्यान दो, अपने भाई की मृत्यु शय्या

के पास बैठ मैंने सोचा था कि भगवान ने मेरे भाई को छीनकर उसके बदले तुम्हें प्रेमी के रूप में मुझे दिया है। तुम्हारे हृदय में क्या जरा भी दया नहीं है? मैं और कुछ नहीं चाहती, तुम्हें देखना भी नहीं चाहती; केवल कभी कभी अपना समाचार लिख भेजा करो।"

राजेश्वर ने चिट्ठी रख दी। एकाएक उनके मुँह से एक ठंडी सांस निकल गई।

इसके बाद राजेश्वर ने और एक पत्र उठा कर देखा। जान पड़ता है कि माधव ने इससे पहले के खत का जवाब दिया था। उस पत्र में उर्वशी ने लिखा था—"बहुत दिन बाद तुम्हारा पत्र पाने से मेरे मुर्दा शरीर में जान लौट आई। मैं कैसे तुम्हें समझाऊँ कि तुम्हारा पत्र न पाने से मुझे कितनी बेचैनी होती है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं इस काम के लिये सबके आगे अपराधिनी हूँ, किन्तु यह मेरा दोष नहीं मेरे भाग्य का दोष है। खैर, मैं और कुछ नहीं चाहती, कभी कभी एक खत तो भेज दिया करो।" और एक खत में लिखा था—"आज सात दिन से तुम्हारे खत की राह देख रही हूं। क्या तुम्हें जरा भी फुरसत नहीं मिलती? और कुछ नहीं तो 'मैं अच्छा हूं' इतना ही लिख कर भेज दिया करो। मेरे लिये इतना ही बहुत है।"

राजेश्वर न जाने किस चिन्ता में डूब गये। उनकी आँखें लाल हो गईं। माथे की नसें फूल उठीं। न जाने क्या सोच कर उन्होंने आखिरी पत्र उठाया। यह नहीं मालूम कि पहले के

खत के जवाब में माधव ने क्या लिखा था; इसके जानने का कोई उपाय भी नहीं था। किन्तु उर्वशी ने लिखा है—"तुम्हारा प्रेम-पत्र मिला। सच में ऐसी कामना के बदले मेरा मरना ही अच्छा था। मैं निश्चय मरूंगी; किन्तु मरने से पहले एक बार तुम मुझे दर्शन दोगे? तुमने लिखा है कि गुजरी हुई बातों को भूल जाव। यहाँ आने पर भी तुमने यही बात कही थी। किन्तु यदि भूलने की बात होती तो अब तक भूल गई होती। भूलने में तुम्हारी भी खैरियत थी और मेरी भी। तुमने लिखा कि 'अपने भाई की बातें याद करो; तुम्हारी इन बातों से उनकी प्रेतात्मा को कष्ट होता होगा' यह पढ़ कर मैं बहुत रोई। भाई जीते होते, तो आज मुझे यह नरक भोगना न पड़ता। मैं तो कामना को दबाना चाहती हूँ, किन्तु तुम्हीं बताओ, कैसे दबाऊँ?" इस चिट्ठी पर कई बूँद आँसू के दाग भी दिखाई दिये।

राजेश्वर ने देखा कि सच में वह आखिरी पत्र में यह लिखना भूल गई है कि अब वह अपने पिता के घर जाती है। इसी से माधव ने ससुरार के पते से ही जवाब दिया है।

इन चिट्ठियों को पढ़ने के बाद राजेश्वर के हृदय का क्रोध बड़े जोरों पर भड़क उठा। वे इतना भी समझ न सके कि शायद कोशिश करके भी उर्वशी बचपन के प्रेमी को भूल नहीं रही है। वे समझ न सके कि न भूल सकने के लिये उर्वशी को भी बहुत मनोकष्ट हो रहा है। विधवाविवाहवादी राजेश्वर को केवल बचपन का प्रेम भूल न सकने के अपराध पर उर्वशी के ऊपर जरा भी दया न आई।

राजेश्वर सोचने लगे—"सच में औरतों की ज़ुवान में मिश्री और हृदय में जहर भरा है; औरतें 'विष रस भरा कनक घट' हैं।" अलिफ़ लैला में लिखी औरतों की सब चालवाजियाँ उन्हें सच मालूम हुईं। उन्होंने सोचा कि पहले प्रेम में औरतें प्रेमी को चाहती हैं; इसके वाद वे केवल प्रेम को ही चाहती हैं—इस समय उन्हें अङ्गरेज साहित्यिक वायरन की यह वात वहुत ही सच्ची जान पड़ी। अपने शास्त्र की वातें भी सूझ पड़ीं—"औरतों को सदा सावधानी से रखना चाहिये। निगाहवानी ही औरतों की असली जगह है।" हृदय में इतने वड़े पाप को रख कर भी उर्वशी राजेश्वर के साथ कैसा प्रेम का खेल खेली और राजेश्वर भी कैसे मूर्ख कि उस खेल को सच समझते रहे? विधवा का व्रत और नियम, वचपन में विवाह का रिवाज—इस समय सब उनकी आँखों में उचित दिखाई देने लगा। पहले के समाज सुधार सम्वन्धी सब खयालात उनके मन से निकल भागे। राजेश्वर ने सोचा—"यदि हो सकेगा, तो इस देश में फिर एक बार वाल्यविवाह के लिये आन्दोलन करूँगा।"

मारे चिन्ता के राजेश्वर उस कोठरी में टहलने लगे। इसके वाद आप ही वड़वड़ा उठे,—"मैं भी मनुष्य हूं, मेरा शरीर भी खून और माँस से वना है। मैं इसका वदला लूँगा।" इसके वाद ही उनके मुँह से एक पैशाचिक हँसी निकल गई। दूसरे ही दिन उन्होंने उर्वशी के पिता के घर जाने का निश्चय कर लिया।

ग्यारहवां परिच्छेद

घर की राह में

दूसरे ही दिन राजेश्वर अपनी ससुराल चले। राह में रेल-गाड़ी पर वे सोचते हुए गये कि उस पापिनी को कल क्या कह कर बुलाऊँगा। जैसे उत्सुकता से आकांक्षा, आकांक्षा से आसक्ति, और आसक्ति से प्रेम होता है, वैसे ही पलटा खाने पर प्रेम से उपेक्षा, उपेक्षा से विरक्ति और विरक्ति से घृणा उत्पन्न होती है। राजेश्वर यह समझ नहीं सके कि उनका हृदय कैसे घृणा के रूप में बदल गया। इस समय उर्वशी के लिये उनके हृदय में घृणा ही घृणा मौजूद है। राजेश्वर यह न जान सके कि पहले पहल जब वे उर्वशी से मिलने के लिये सुख की कल्पना करते हुए चले थे, वह सुख अब कहां चला गया? शायद वह प्रेम बवण्डर में पड़े सूखे पत्तों की तरह हृदय के इस अन्धड़ में ही न जाने कहाँ उड़ गया।

रेलगाड़ी बरेली के स्टेशन पर आ खड़ी हुई। एक पुराने तांगे पर सवार हो राजेश्वर अपनी ससुराल पहुंचे। उनके एकाएक आ पहुंचने से किसी अमङ्गल की आशङ्का से उर्वशी का हृदय कांप उठा।

दिन किसी तरह बीत गया। रात को उर्वशी ने देखा कि राजेश्वर का चेहरा बहुत ही गम्भीर हो रहा है। इससे पहले उसने स्वामी के चेहरे पर ऐसी गम्भीरता देखी न थी। उर्वशी

ने स्वामी को प्रणाम किया। राजेश्वर ने कहा,—"रहने भी दो, क्या कष्ट करती हो?"

उर्वशी ने पूछा,—"कैसी तबीयत है?"

इस बात का कोई जवाब न देकर राजेश्वर ने कहा,—"कल ही मैं घर जाऊँगा। मेरे साथ तुम्हें भी चलना पड़ेगा।"

उर्वशी ने पूछा,—"क्यों, घर में सब कुशल है न?"

राजेश्वर०। तुम्हें चलना है या नहीं?

उर्वशी०। तुम जहां कहो, चलने को तय्यार हूँ। क्या तुम मकान से आ रहे हो?

राजेश्वर०। नहीं, इलाहाबाद से।

उर्वशी०। क्यों?

राजेश्वर०। किसी काम से गया था।

उर्वशी०। तब क्या तुम्हें मेरी चिट्ठी नहीं मिली?

राजेश्वर०। मिली थी।

उर्वशी०। तब जवाब क्यों नहीं दिया?

राजेश्वर०। इसी चिन्ता के मारे तो तुम्हें नींद नहीं आती थी।

उर्वशी ने उनके मुँह की ओर देखा,—देखा उस सांवले चेहरे पर चमकती हुई आंखें सर्प के मणि जैसी जान पड़ती थीं। उर्वशी ने सोचा,—"यह क्या माजरा है!"

राजेश्वर और कुछ न बोले, चुपचाप बिछौने पर लेट रहे।

राजेश्वर ने आते ही अपने ससुर से कह दिया था कि घर में कोई जरूरी काम है इसी लिये वे उर्वशी को विदा कराने आये हैं। दामाद यदि लड़की को ले जाना चाहे, तो उसमें

ससुर का दखल देना बिलकुल भूल है ; वल्कि इससे कभी कभी मनमुटाव पड़ जाता है। उर्वशी के पिता इन सब बातों को खूब समझते थे, इसीलिये उन्होंने किसी तरह की आपत्ति नहीं की। अवश्य ही उर्वशी की माँ ने कुछ दवी जुबान कहा, किन्तु दामाद का कोरा जवाब पा वह चुप हो गई।

दूसरे दिन उर्वशी को ले राजेश्वर सेकेण्ड क्लास गाड़ी से बनारस चले। इस सेकेण्ड क्लास में दो ही सवारी हैं; इन दोनों में भी स्त्री पुरुष का बहुत बड़ा सम्बन्ध है; फिर भी दोनों में किसी तरह की बातचीत नहीं हो रही है । उर्वशी ने कई बार बातें छेड़ीं; किन्तु राजेश्वर एकाध बातों का जवाब दे फिर चुप हो रहे। उन की बातचीत करने की इच्छा न देख उर्वशी भी चुप हो गई। पति की ऐसी गम्भीरता देख उर्वशी को बड़ी चिन्ता हुई। वास्तव में राजेश्वर बड़ी चिन्ता सागर में गोते लगा रहे हैं।

यथा समय गाड़ी बनारस पहुंची। राजेश्वर उर्वशी को लिये हुए घर आये। उर्वशी ने आते ही सास को प्रणाम किया। सास ने पूछा—"कैसी हो?"

उर्वशी ने कहा—"तुम्हारे आशीर्वाद से अच्छी हूं।"

इसके बाद सास बहू में भी किसी तरह की बातचीत नहीं हुई।

बारहवाँ परिच्छेद

गुप्त बातें

जिस दिन राजेश्वर उर्वशी को लेकर घर पहुंचे उसके दूसरे ही दिन महेश्वर का एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने अपना दुःख प्रकट किया था कि हजार मना करने पर भी माधव बसरे की नौकरी लेकर चला गया। राजेश्वर समझ गये कि उर्वशी की चिट्ठियों को गायब और उनके मुख भाव को गम्भीर देख माधव सब बातें समझ गया और इसी कारण भाग गया है।

दोपहर के समय भोजन के उपरान्त राजेश्वर ने अपने आराम की कोठरी में पहुँच कर देखा कि उर्वशी किसी चिन्ता में बैठी है। राजेश्वर को देख उर्वशी भी चौंक पड़ी। राजेश्वर ने ताने के रूप में कहा—"बड़ी चिन्ता में हो न ?"

उर्वशी ने कोई जवाब नहीं दिया। राजेश्वर ने देखा कि उसकी आंखों में आंसू डबडबाये हुए हैं। राजेश्वर ने सोचा, फिर वही धोखा! शायद औरतें मरते दम तक अपनी चतुराई से बाज नहीं आतीं। वे कुछ न बोल चुपचाप बिछौने पर पड़ रहे।

उर्वशी उनके पैताने जा बैठी। इसके बाद उसने रोते रोते पूछा,—" मैंने कौन सा अपराध किया है ? "

राजेश्वर०। तुमने कोई पाप नहीं किया ?

उर्वशी रोने लगी। राजेश्वर नीचे जाने के लिये तेजी के साथ उठ कर चले। जाते जाते धीमे स्वर में उनके मुँह से निकल पड़ा—"कुलटा! आँसू से दबाने चली है !!"

राजेश्वर के मुंह से आप ही आप शब्द निकल पड़े। उन्होंने उर्वशी को सुनाने की इच्छा से यह शब्द कहे न थे, बल्कि क्रोध से आप ही आप हृदय की बात निकल पड़ी थी, किन्तु उर्वशी के हृदय पर इस शब्द ने वज्र का काम किया।

कुछ ही देर में फिर सीढ़ी पर राजेश्वर के जूते का शब्द सुनाई दिया। इसके बाद हा कोठरी में पहुंच कर राजेश्वर ने कई चिट्ठियां उर्वशी के सामने फेंककर कहा, "यह अपने पाप का प्रमाण देखो।"

उर्वशी ने देखा, उसी के हाथ की लिखावट है। उसने माधव को जो चिट्ठियां लिखी थीं यह सब वही चिट्ठियां हैं। उर्वशी पत्थर हो गई।

कुछ देर बाद उर्वशी ने आंख उठा कर देखा कि राजेश्वर चले गये हैं और वह उस कोठरी में अकेली बैठी है। एक एक कर उर्वशी सब चिट्ठियों को पढ गई; इसके बाद वह चिट्ठियों को लेकर नीचे उतर गई। सन्दूक में चिट्ठियों को बन्द कर उर्वशी फिर ऊपर चली आई।

उर्वशी सोचने लगी—"सब कुछ समझ गये हैं, तब भी मेरा अपमान नहीं करते हैं, मुझ पापिनी में ऐसे प्रेम का बदला घृणा के रूप में चुकाया है। मेरे स्वामी देवता के समान हैं और मैं उनकी पत्नी पिशाची जैसी। मर जाना कबूल है, किन्तु अब इस गुप्त प्रेम का नाम मिटा कर ही छोड़ूंगी। अब उनसे विश्वासघात न करूँगी।"

सभी के जीवन में एकाध ऐसी घटनाय हो जाती हैं

जिससे हृदय के सब भाव उलट-पलट जाते हैं, जीवन का उद्देश्य ही बदल जाता है, जीवन की धारा अपने लिये एक नई ही राह बना लेती है। उर्वशी के जीवन में भी आज ऐसी ही नई घटना हो गई है। उर्वशी आप ही अपने हृदय के साथ संग्राम करने लगी। उसने विचार किया कि एक को हृदय में लाने से दूसरा आप ही दूर हो जायगा, अर्थात् यदि वह राजेश्वर को अपने हृदय में बैठायेगी तभी माधव दूर होगा।

उर्वशी फिर चिन्ता करने लगी, "हाय! कैसे कुसमय में मैंने माधव को देखा, बड़े कुसमय में मैंने उससे प्रेम किया। कुसमय में ही मुझ बालिका के हृदय में प्रेम का पुष्प खिल उठा। जो होना था वह तो हो ही चुका था, इसके बाद मैंने माधव को पत्र क्यों लिखा? वह मुझसे जितना दूर भागना चाहता था, मैं उसे उतना ही अपनी ओर खींच रही थी। जैसे साँप मार डालने के लिये ही शिकार को अपनी ओर खींचता है वैसे ही मैंने उसे खींचा। उसके और अपने सर्वनाश के लिये कुलवधू होकर भी मैं क्यों उसे बुलाने गई? यदि मैं न बुलाती तो वह कभी न आता।

दुःख और कष्ट के समय मनुष्य आप ही अपने को धिक्कार देता है, इस समय उर्वशी भी अपने को ही सब दोषों की जड़ समझने लगी।

उर्वशी यही सोच रही थी, ऐसे समय कहीं से आवाज आई,—"क्या डूब मरने के लिये चिल्लू भर पानी भी नहीं मिलता?"

उर्वशी चौंक पड़ी। यह शब्द किसने कहे? उर्वशी ने चारों ओर देखा, कोठरी में कोई भी दिखायी न दिया। उर्वशी ने खिड़की से झाँक के देखा। देखा कि तालाब किनारे किसी की दो मजदूरियाँ बरतन मांज रही हैं और किसी पड़ोसिन को देख उसी पर कटाक्ष कर एक कह रही है—"हाँ हाँ, कहती तो हूँ कि डूब मरने के लिये एक चिल्लू पानी भी नहीं मिलता?"

उर्वशी ने सोचा—सच में मुझे डूबने को भी चिल्लू भर पानी नहीं।

तेरहवां परिच्छेद

दोनों तरफ

जैसे जैसे दिन बीतने लगा, वैसे ही वैसे उर्वशी के हृदय में परिवर्तन होने लगा। लोग कहते हैं कि चेष्टा करने से सब कुछ होता है। वास्तव में हृदय की चेष्टा से बहुतेरे काम होते भी हैं। चाहे हृदय की वेदना एकबारगी ही दूर न भी हो किन्तु दब जरूर जाती है। घाव भर जाता है, चाहे थोड़ा सा दाग रह जाय।

मन की चोट से उर्वशी के हृदय की घृणा जैसे जैसे बढ़ने लगी, वैसे ही वैसे राजेश्वर की ओर उसके हृदय में आकर्षण उत्पन्न होने लगा। शायद इसका और भी एक कारण हो। अभ्यास से धीरे धीरे सब कुछ हो जाता है। जिस भोजन की ओर पहले किसी को अश्रद्धा होती है, अभ्यास से वही खाना धीरे धीरे रुचिकर जान पड़ने लगता है। नहीं तो शराब जैसी

बेस्वाद् चीज किसी को भली न जान पड़ती। उर्वशी अब तक राजेश्वर के साथ प्रेम का खेल कर रही थी। किन्तु अब धीरे धीरे प्रेम ने उसके हृदय को जकड़ लिया है।

उर्वशी स्वयं नहीं समझती थी कि उसके हृदय में ऐसा उलट फेर क्यों हो गया। किन्तु इसका वह असर समझ गई कि उसके हृदय का भाव बहुत बदल गया है।

आज कल राजेश्वर उर्वशी से अधिक बोलते भी न थे। इसके अलावा उर्वशी को उठते बैठते अपनी मुंहजोर सास की बातें सुननी पड़ती थीं। राजेश्वर की माता अपने पुत्र का भाव देख समझ गई हैं कि उसे सब बातों की खबर हो गई है। इस लिये उनकी चिल्लाहट अब मध्यम से पञ्चम में पहुंच गई है। सब बातों में गाली सुन सुन कर उर्वशी घर का काम करती है। चाहे कोई दोष हो या न हो, उर्वशी को गाली सुने बिना छुटकारा नहीं।

अपनी माँ का ऐसा व्यवहार देख राजेश्वर बहुत प्रसन्न होते थे। अब तक राजेश्वर ने उर्वशी को इसलिये घर से निकाला नहीं था कि बात खुल जाने से राजेश्वर को कलङ्कित होना पड़ेगा। उठते बैठते उर्वशी का अपमान होते देख वह समझते थे कि यह भी एक प्रकार का बदला लिया जा रहा है; इससे वह सन्तुष्ट होते थे। जब उनकी मां ने देखा कि बहू का अपमान करने से पुत्र प्रसन्न होता है, तब उनके अत्याचार की मात्रा और भी बढ़ गयी।

किन्तु इसके लिये उर्वशी किसी को भी दोष नहीं देती

थी। सोचती थी कि यह सब उसी का कर्म्म फल है; इसमें किसी का कुछ दोष नहीं। यह उसे अपने ही पाप का दण्ड मिल रहा है।

उर्वशी का मुंह दिन पर दिन मलीन होने लगा, दोनों आंखें धँस गईं, राजेश्वर की ओर पहले जो इसके हृदय में घृणा थी, वह आकर्षण बनी, इसके बाद भक्ति के रूप में बदल गई। तब वह उस भक्ति के भाव को प्रेम से मिलाने लगी। उसके हृदय में राजेश्वर का प्रेम बढ़ने लगा और माधव से घृणा होने लगी।

उर्वशी सोचने लगी—क्या सुख का दिन बीत जाता है तो फिर नहीं आता? यदि कभी जीवन की आशा नष्ट हो जाती है तो क्या फिर सुख मिला नहीं करता! यदि ऐसा ही है तो लोग दुःख का जीवन किस आशा से बिताते हैं।

उर्वशी समझ गई कि इस जीवन में राजेश्वर उसके अपराध को भूल न सकेंगे किन्तु क्या वह उनके प्रेम का जरासा हिस्सा भी न पायेगी? यदि न पायेगी तो किस आशा से वह अपने पापमय जीवन को धारण किये हुई है।

आशा बिना कोई भी जी नहीं सकता। उर्वशी के हृदय में भी कुछ आशा अवश्य थी, नहीं तो वह कदापि जीती न बचती। किन्तु मालूम नहीं कि वह आशा क्या थी?

इधर उर्वशी के परिवर्त्तन के साथ साथ राजेश्वर में भी परिवर्तन होने लगा। उर्वशी का परिवर्तन उसे उन्नति की ओर लिये जाता था, किन्तु राजेश्वर का परिवर्त्तन अधःपतन की ओर जा रहा था।

उर्वशी ने देखा कि राजेश्वर का क्रोध दिन पर दिन बढ़ता ही चला जा रहा है। नित्य नित्य अत्याचारी राजेश्वर के अत्याचार से खेतिहरों की औरतें भूखी प्यासी सिफारिश करने के लिये उनकी मां के पास दौड़ी आती थीं, रोती थीं, कलपती थीं, और राजेश्वर को समझा देने के लिये उनकी मां से बहुत बहुत गिड़गिड़ाती थीं। जो उस मुंहजोर बुढ़िया की अधिक खुशामद करती उसकी ओर से बुढ़िया भी राजेश्वर से कुछ कह दिया करती थी। किन्तु राजेश्वर के आगे सब तरह की शिकायतें व्यर्थ हो जाया करती थीं। जिस काम में जरा भी लाभ दिखाई देता उसके करने में राजेश्वर जरा भी हिचकते न थे। न्याय अन्याय का विचार तो उनमें अब था ही नहीं। किन्तु गरीबों पर अत्याचार होते देख उर्वशी रो देती थी।

रोने के सिवा उसके पास और कोई उपाय ही नहीं था। जो स्त्री अपने स्वामी के प्रेम को खो चुकी है उसके लिये रोने के सिवा और उपाय ही क्या है? पति के प्रेम से रमणी के हृदय में दूना बल होता है; पति का प्रेम मजबूत जिरह बख्तर की तरह रमणी की रक्षा करता है। जो स्त्री अपने दोष से उसे खो बैठती है उसका दुर्भाग्य सबसे अधिक है, सिवा रोने के उसके लिये संसार में और कुछ नहीं है।

राजेश्वर अब वही राजेश्वर नहीं रहे। बचपन में वह धर्म्म का भय, जवानी में वह उन्नति की प्यास, समाज, संस्कार की इच्छा, सब राजेश्वर भूल गये हैं। धर्म्म और समाज के बारे में बड़ी बड़ी वक्तृतायें गायब हो गई हैं। अब याद आने से उन्हें

जान पड़ता है, कि वह सब जवानी और बचपन का खेल था।

वह बीती हुई बात इस समय राजेश्वर को स्वप्न के समान जान पड़ती हैं ; किन्तु इस समय राजेश्वर के लिये स्वयं इतनी चिन्तायें मौजूद हैं जिसमें इन सब चिन्ताओं को हृदय में स्थान भी नहीं मिलता। मनुष्य जब अपने हृदय की कोमल वृत्तियों को खो बैठता है तब कोई भी दुष्कर्म ऐसा नहीं जो उससे हो न सके। अत्याचारी के लिये केवल "आवश्यकता" शब्द ही बहुत है। वास्तव में स्वार्थी मनुष्य सब कुछ कर सकता है। कहते हैं कि किसी ऋषि ने एक सौ गौओं के बलिदान के वास्ते अपने पुत्र को बेच डाला था। फिर और भी दिखाई देता है कि कोई राजा एक सौ गौओं को लेकर उस पुत्र को मार डालने के लिये मुस्तैद थे। आज कल भी दिखाई देता है कि करुणावतार यीशु खीष्ट के उपासकगण केवल अपने स्वार्थ के लिये जहर की तरह नुकसान पहुंचाने वाली शराब और अफ़ीम को बेचते हैं। यदि कोई और राजा अपने पुत्र जैसी प्रजा को बचाने के लिये इसके विरुद्ध खड़े होते हैं तो नर रक्त से भूमि को कलुषित करके भी "आवश्यकता" के बहाने व्यवसाय की रक्षा की जाती है।

आजकल राजेश्वर ने एक बहुत अच्छा व्यवसाय आरम्भ किया है उसका नाम है "सवाई।" शायद सवाई शब्द का अर्थ भी समझाना पड़ेगा। आज कल खेतिहरों की दशा ऐसी खराब होगई है जिससे उन्हें लाचार हो सवाई पर अन्न लेना ही पड़ता है। महाजन लोग खेतिहरों को एक मन अन्न देकर सवा मन लिख

लिया करते हैं। अर्थात् खेतिहर महाजन से जितना अन्न लेता है, फसल तय्यार होने पर उसे उसका सवाया देना पड़ता है। गाँव में आज कल ऐसे महाजनों की कमी नहीं है। इन सब बातों को सोच कर शेक्सपियर का शाइलक-चरित्र केवल कवि की कल्पना ही नहीं जान पड़ती। इस पर सूद का भी सूद लिया जाता है; यही दस्तूर है। इसमें सन्देह नहीं कि इससे महाजनों के गल्ले में शीघ्र ही अन्न भर जाता है, किन्तु प्रजा का हल और बैल तक बिक जाता है। गवर्नमेण्ट के कम्पनी कागज का सूद सैकड़े में तीन साढ़े तीन रुपये है। यदि इस हिसाब से महाजन लोग सैकड़े में दस रुपये सूद भी ले लिया करें, तो प्रजा का बहुत मङ्गल हो। किन्तु नहीं, यहाँ तो अपना घर भरना चाहिये पराये घर में आग लगे, तब भी विशेष कोई हर्ज नहीं।

ऐसे ही व्यवसाय से राजेश्वर को आज कल खूब आमदनी हो रही है। इस व्यवसाय की बदनामी से बचने के लिये आज कल राजेश्वर अदृष्टवादी बन गये हैं। शर्म को दबाने के लिये वे अक्सर कह दिया करते हैं,—"मैं कौन हूं? मैं क्या हूं? मैं तो कुछ भी नहीं किया करता! भगवान् मुझे जैसी आज्ञा देते हैं, वैसा ही करता हूं। मैं तो भगवान के हाथ की एक कठ-पुतली हूं। अर्जुन ने स्वयं कहा है,—

"जानामि धर्म्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानामिधर्म्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥"

इसी प्रकार दिन बीतने लगा।

चौदहवाँ परिच्छेद

इस बीच में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। पति की लापरवाही और सास की यातना सहते सहते उर्वशी अपने पिता के घर चली गई है। उसके जाने का कारण भी था, नहीं तो शायद इसी घर में उसकी यातनाओं का अन्त हो जाता। उर्वशी को उसी समय से गर्भ था जब राजेश्वर उसे प्रेम की दृष्टि से देखता था। धीरे धीरे वह गर्भ पूरा हुआ इसी खयाल से वह अपने पिता के घर भेज दी गई है।

उर्वशी के जाने के बाद कई दिन के लिये राजेश्वर भी इलाहावाद गये थे। राजेश्वर की भतीजी चमेली की शादी थी। वहां अपने भाई से बातें करते करते एक दिन राजेश्वर ने सुना उनके बड़े भाई ने कहा,—"यदि तुम्हारे भाभी जैसी स्त्री मेरे घर न होती, तो मेरी न जाने क्या दशा होती। जगत् में यदि स्त्री की सृष्टि न होती, तो मनुष्य दानव बन जाते।"

आज रात को लेटे हुए राजेश्वर अपने भाई की उसी बात को याद कर रहे हैं। एकाएक उनके हृदय से एक ठंडी सांस निकल पड़ी। उनके दिल में आया—भाई की तरह मैं भी स्त्रियों पर क्यों न विश्वास कर सका? क्या केवल उर्वशी के व्यवहार से?

इसके बाद फिर राजेश्वर का भाव बदल गया। वह सोचने लगे—"औरतें मनुष्यों की दुश्मन हैं; जगत् में पुरुषों का जो कुछ अमङ्गल हुआ है, उन सबकी जड़ में औरतें ही हैं। रमणी के रूप की आग से ही राक्षस-राज का फूल और लताओं से सुशोभित, रत्न-प्रदीपों के तेज से उज्ज्वल, नाट्यशाला

जैसा महल; बहुत बड़ा वंश; तीनों लोक में फैला हुआ तेज; सब सूखे पत्ते की तरह जल कर राख हो गया। कितने ऋषि मुनियो का कठोर तपस्या को रमणियों ने अपने पैरों तले कुचल डाला है।

उर्वशी के व्यवहार से स्त्री जाति पर राजेश्वर को अविश्वास हो गया था। उसके विचार से रमणी का बल केवल चातुरी है, केवल छल है। मूर्ख मनुष्य ही इस छल में भूला करते हैं। रमणी सदा मनुष्य के सर्वनाश का ही विचार किया करती है; पुरुषों का काम है कि अपने को उस सर्वनाश से बचायें। रमणी में प्रेम है ही कहां जो वह प्रेम करेगी। स्नेह या प्रेम; क्रोध या घृणा; स्त्रियों में है ही नहीं। जब तक हृदय में दृढ़ता न हो तब तक यह सब गुण रही नहीं सकते। स्त्रियों के हृदय में दृढ़ता है ही नहीं। केवल पुरुषों के भाग्य से संसार रूपी समुद्र का मन्थन करने पर यह जहर उत्पन्न होता है। पुरुषों के विचार सूर्य्य के समान और स्त्रियों के विचार तुच्छ जुगनू के बराबर हैं। पुरुषों और स्त्रियों के हृदय के बीच शराब और पानी का प्रभेद है। इस जगत् में स्त्रियों का अधिकार स्थान पुरुषों से बहुत नीचे है। पुरुषों की दासी बन कर रहना ही स्त्रियों के लिये दुरुस्त है। स्त्री समाज में शिक्षा और सभ्यता का बढ़ाना वृथा है—इससे विपरीत फल होगा। इससे स्वभावतः चतुरा स्त्रियों की चतुरता और भी बढ़ जायगी जो कि पुरुषों का और भी अमङ्गल करेगी। औरतों में ज्ञान और गुण की आशा करना निरा पागलपन है। लिखना पढ़ना सीख कर स्त्रियाँ पुरुषों की

बराबरी करने की चेष्टा करती हैं जो कि बिलकुल ही अस्वाभाविक है; संसार के लिये भी अनिष्टकर है। अज्ञानता की घोर अँधेयारी में पुरुषों की दासी बन कर उनकी आज्ञा का मानना ही स्त्रियों का एक मात्र काम है। स्त्रियों को ज्ञान की जरूरत? उन्हें शिक्षा देने की आवश्यकता ही क्या है? सभ्यता सीख कर ही वह सब क्या कर लेंगी? जहां स्त्रियां पुरुषों की दासी नहीं वहां ही सर्वनाश हुआ करता है। शिक्षा पाने से स्त्रियां पुरुषों की दासी न होकर पुरुषों को ही दास बनाने की चेष्टा किया करती हैं; समाज में स्वाभाविक को अस्वाभाविक बना कर छोड़ती हैं। स्त्रियों का अधिकार कैसा? मौका मिलते ही स्त्रियां समाज के पिंजड़े से उड़ जायंगी। चरित्र? जो प्रेम करना नहीं जानतीं, छल करना ही जिनकी योग्यता है, जो पाप पर ही अधिक ध्यान दिया करती हैं, उन स्त्रियों के चरित्र के बारे में क्या कहना! स्त्रियों को सभ्यता, स्वाधीनता आदि देना और अपने हाथ से जहर बना कर पी लेना बराबर है।

राजेश्वर में आजकल ऐसा ही परिवर्त्तन हो गया है। मनुष्य-हृदय के हरेक कोने में स्त्रियों की उन्नति के बारे में जो समवेदना छिपी हुई है उसे राजेश्वर ने अपने हृदय से दूर कर दिया है। जिस विश्वास पर हम लोगों का हृदय कहता है कि स्त्रियों की उन्नति होने से हमारे गृहस्थ जीवन के रूप सौगुने बढ़ जायंगे, उस विश्वास को राजेश्वर अपने हृदय में जमने भी नहीं देते।

इस में सन्देह नहीं कि पुरुष और स्त्री का कर्मक्षेत्र बिलकुल अलग है। किन्तु पति और पत्नी का सम्बन्ध ऐसा है कि हमेशा एक दूसरे से अपने काम में सहायता की आशा रखते हैं। आज कल के जमाने में पति-पत्नी के मानसिक भाव से इतना अलगाव है कि एक को दूसरे के काम से सहानुभूति नहीं होती। पत्नी की बातें ऐसी बच्चों जैसी होती हैं जिसे सुन पति लापरवाही दिखाते हैं; इधर पति की बातें इतनी गूढ़ होती हैं, जो पत्नी की समझ में नहीं आतीं। इसी से दोनों के आदर्श में अलगाव दिखाई देता है। स्वामी अपने आदर्श के समान स्त्री न पाने से जीवन क्षेत्र को वीरान समझते हैं; इधर स्त्री समझती है कि वह एक दिन भी अपने पति को सुखी न कर सकी—इस से स्वयं भी सुखी नहीं हो सकी। एक ओर न बुझने वाली प्यास, भयानक निराशा, हमारे पारिवारिक जीवन को कड़वा बनाये हुई है। दूसरी ओर पत्नी अपने बालबच्चों में ही व्यस्त रहती है; पति अपने काम में फंसा रहता है। दोनों ही के हृदय पर एक बहुत बड़ा बोझ रक्खा रहता है; पति सोचता है कि हमारे लायक स्त्री मिलती तो जीवन की सब आशायें मिटतीं, जीवन में कितने ही काम किये जाते, इस उजड़े हुए हृदय से कोई काम बन न पड़ा, जीवन वृथा हो गया। पत्नी सोचती है कि यदि पति जरा सा अपने ऊँचे आसन से नीचे उतर जाते, यदि एक बार भी मुझ पर दया की दृष्टि डालते, तो मैं कृतार्थ हो जाती; कुछ भी नहीं हो सका।

इस न बुझने वाली प्यास के पीछे कितने ही युवक अपना

सर्वनाश कर डालते हैं। घर में सुख नहीं इसी से जीवन के पाप की उत्तेजना में वह लोग अपनी यातना को डुबाना चाहते हैं। जो लोग कम व्यथित होते हैं उनका अधःपतन अकसर विवाह के बाद से आरम्भ होता है। क्योंकि हताशा के पहुंचते ही अपने जीवन वासनाओं को त्याग वे उन्नति की आशा को तोड़ देते हैं। इससे कितनी ही प्रतिभायें विनष्ट हो जाती हैं, कितने ही जीवन ध्वंस हो जाते हैं, कितने ही गृहस्थों के जीवन में विष लुढ़क पड़ता है।

आजकल तो ऐसा ही कुफल होता दिखाई दे रहा है। नई सभ्यता की बाढ़ से हमारा पुराना आदर्श डूबा जा रहा है, हिन्दू के घर हिन्दू की प्राचीन गृहलक्ष्मियों का आदर्श मिटा जाता है, फिर भी हमारे नये आदर्श बिलकुल अधूरे ही दिखाई देते हैं।

राजेश्वर के ध्यान में यह सब बातें आई ही नहीं। मनुष्य का हृदय ही ऐसा है। राजेश्वर के हृदय में स्त्री जाति की ओर से भयानक अविश्वास घुस बैठा है। धीरे धीरे राजेश्वर अधःपतन की ओर बढ़ रहे हैं। यह स्वाभाविक नियम है कि मनुष्य अपने बड़प्पन को जहांतक खोता है वहां ही तक नीचता उसके हृदय में बढ़ती जाती है। इसीसे राजेश्वर अपने हृदय की बड़ाई को खोकर निचाई की ओर आगे बढ़ रहे हैं। उर्वशी का व्यवहार उनके अधःपतन को और भी तेजी के साथ बढ़ा रहा है।

पन्द्रहवां परिच्छेद

आशा

पूस महीने की ठंडी हवा चल रही है। दोपहर की धूप से भी किसी की शीत दूर नहीं होती।

अपने पिता के घर एक कोठरी में उर्वशी बैठी है, उसकी गोद में एक बच्चा भी है, कार्तिक महीने के अन्तमें उर्वशी के एक लड़का हुआ है। राजेश्वर को यह समाचार मिल चुका है। किन्तु जब से उर्वशी अपने पिता के घर आई है तब से वे एक बार भी उसे देखने नहीं आये। उर्वशी के जापे के समय सास ने प्रचलित रीति के अनुसार कुछ थोड़ासा सामान भेज दिया था। जो लोग थाली लेकर गये थे उन नौकरोंको सख्त ताकीद थी कि उर्वशी के घर पानी भी न पीना। उर्वशी ने नौकरों को भोजन करने को कहा। उन लोगों ने साफ कह दिया—"आप तो माता जी के क्रोध को समझती ही हैं, यदि हम लोग पानी भी पियेंगे, तो उनके क्रोध से किसी तरह बचने न पावेंगे।" यह सुन उर्वशी ने और कुछ नहीं कहा। रोती हुई चली गई। उर्वशी के माता पिता अपनी समधिन के व्यवहार से बहुत आश्चर्य में आये। किन्तु कुछ बोले नहीं; क्योंकि लड़की वाले सदा डरा ही करते हैं।

आजकल उर्वशी के गाल की हड्डी दिखाई देती है; दोनों आँखें धस गई हैं; एकाएक देखने से पहचान नहीं पड़ती। एक तो प्रसूति की कमजोरी है, उस पर दुश्चिन्ता।

कई दिन हुए उर्वशी प्रसूति के घर से बाहर निकली है।

आज अकेली बैठ बच्चे के मुँह की ओर देख सोच रही है—"यह बन्धन पर भी बन्धन कहाँ हो आया? उस समय सोच रही थी कि लड़का हो जाने पर मैं जान दे दूंगी। अब देखती हूं कि यह छोटासा बच्चा न जाने किस वायु से आकर मेरे जीवन में एक नया बन्धन बाँध रहा है। इसने इस समय मेरे व्यथित हृदय को भी आनन्दित कर दिया है।"

फिर उर्वशी सोचने लगी,—"मैं तो अपराधिनी हूं; किन्तु यह छोटा सा बच्चा तो बिलकुल ही अनजान है, इसे कुछ भी समझ नहीं, क्या इस पर भी उन्हें दया न होगी? यह तो मेरा भी बच्चा है और उनका भी, जब इस पर मेरा इतना स्नेह है तब उनका क्यों न होगा? जरूर होगा। एक बार इसे देखने से क्या वे बिना प्यार किये रह सकते हैं।"

धीरे धीरे उर्वशी की आशा प्रबल हो उठी।

कोई सहज ही मरना नहीं चाहता। थोड़ी सी बात पर भी जो एकाएक आत्महत्या कर बैठते हैं, वे या तो पागल और या तो उत्तेजना के दास हैं। किसी भी घटना में पागलपन या उत्तेजना न होने से कोई भी मरा नहीं करता। संसार में जिसके लिये कोई भी अवलंब है, वह मरना नहीं चाहता।

भला कहीं ऐसे भी मनुष्य हैं, जिन्हें दुःख न हो? यदि सभी दुःखी जीवन त्याग किया करते तो संसार उजड़ जाता। जगत् में कौन ऐसा है जिसकी सब आशायें पूरी हुई हों? यदि निराश होने से ही लोग मरते, तो अबतक कौन जीता बचता? जिसके लिये कोई आशा नहीं, वह भी आशा रखते हैं। जिनके

जीवन का सारा अवलंब छूट चुका है, वे नया अवलंब ढूंढते हैं। क्यों? इसी लिये कि जीवन पर मनुष्य की स्वाभाविक ममता है। पत्नी, पुत्र, कन्या—सबको ही चिता की आग में फूंक कर जीवन के सब सुखों को जलाने वाले संसार रूपी श्मशान में मनुष्य फिर सुख की खोज में व्यस्त हो जाता है। क्यों? इस लिये कि जीवन मनुष्य को बहुत ही प्रिय है।

संसार की निर्दयता को मनुष्य सहज ही भूल जाता है किन्तु संसार के एक बूंद स्नेह को मनुष्य भूल नहीं सकता। असल बात यह है कि मनुष्य ही संसार से प्रेम करता है। हम जिससे प्रेम करते हैं, उसके सब दोषो को बहुत ही सहज में भूल जाते हैं, किन्तु उसके गुण और स्नेह को सहज ही भल नहीं सकते। नहीं तो जिसके व्यवहार से हृदय में पीड़ा होती है, जिसके लिये जीवन का सुख विनष्ट हो जाता है, उसे ही देखने की इच्छा क्यों होती है? उसके ही लिये हृदय व्याकुल क्यों होता है? आप कहेंगे कि यह दुर्बलता है, कहिये, किन्तु दुर्बलता भी मनुष्य के हृदय के साथ जड़ित है। यह दुर्बलता न होती तो संसार के चलने में भी सन्देह होता। प्रवृत्ति से ही दुर्बलता की उत्पत्ति है। निवृत्ति वादी इस दुर्बलता को दूर करने की सलाह देंगे; किन्तु उन्हें साथ ही इसका भी विचार कर लेना चाहिये कि संसार की भलाई होगी या बुराई।

इस विचित्र शोभा से भरे संसार को कोई भी सहज ही छोड़ना नहीं चाहता। मनुष्य सोचता है कि क्या इतने बड़े ससार में मुझे जरा भी सुख न मिलेगा? शायद एक बूंद ही

मिल जाय। प्रेम के सागर को मथने पर जिसके भाग्य में केवल जहर ही मिला है, वह भी उस जहर से एक बूंद अमृत निकालने की कोशिश करता है, क्योंकि मनुष्य सोचता है कि आज नहीं तो कल सुख मिलेगा ही।

मनुष्य के मङ्गल या अमङ्गल के विचार से आप इस आशा को छलना कहना चाहें तो कह सकते हैं; किन्तु जरा समझिये तो—जगत् में आशा न होती, तो कितने आदमी काम में सफलता पाते? यह आशा न होती, तो हताश होकर ग्रन्थकार कोई ग्रन्थ न लिखते, बिलकुल ही हताश होने या उचित सम्मान न मिलने से वैज्ञानिक लोग अपने काम में मन न लगा सकते। तब संसार की उन्नति आज किस ठिकाने लगती? यदि ऐसा होता तो स्वदेश की उन्नति तो दूर रही; मनुष्य अपनी उन्नति भी कर न सकता।

उर्वशी के हृदय में अब जननी के प्रेम का विकाश हुआ है; इस लिये उसके हृदय की कठोरता अब कोमलता के रूप में बदल गई है। माता की सहन शीलता, माता का धीरज, माता का स्नेह और माता के सच्चे भाव पर ही स्त्रियों का विशेष अधिकार है—इसी से स्त्रियां देवी समझी जाती हैं। जिन स्त्रियों में माता के भावों का उलटा भाव दिखाई दे; समझ लेना चाहिये कि वे अपने देवीपन को खो चुकी हैं। माता के स्नेह से इस समय उर्वशी का हृदय पूर्ण है। इसी से आज वह सन्तान के मुंह की ओर देख सोचती है—"राजेश्वर इसे प्रेम की दृष्टि से देखेंगे।" यही उसकी आशा है। उसने पहले ही सोचा था

कि गर्भ के सन्तान को पैदा कर मर जायगी, किन्तु आज सोच रही है कि इसे छोड़ कर कैसे जाऊं ?

उर्वशी सोचने लगी कि यह कैसा माया का बन्धन है ? इस बंधन का ऐसा आकर्षण तो इससे पहले कभी दिखाई ही नहीं दिया। न जाने कहां से इस बच्चे ने आकर मेरे हृदय के सुनसान हिस्से को बसा दिया। इसे क्षण भर भी न देखने से बेचैनी होती है, सारा संसार सूना जान पड़ता है—तब इसे छोड़ कर मैं सदा के लिये कहां जा सकती हूं ? जाने से फिर यह कहां देखने को मिलेगा ? केवल इसके मुंह की ओर देख मैं सब तरह के दुःख सहने को तय्यार हूं। सब तरह से लांछना और कलंक सहने को तय्यार हूं, किन्तु इसे छोड़ कर जी नहीं सकती।

उसी दिन तीसरे पहर बहुत दिन के बाद राजेश्वर ससुराल आये। किसी काम से राजेश्वर इलाहाबाद गये थे, वहाँ इनके बड़े भाई महेश्वर ने लड़का देखने न जाने पर बहुत बात सुनाई। इस पर राजेश्वर ने सोचा, उनके ऐसे व्यवहार से लोग तरह तरह की बातें कहेंगे। अन्त में उन्हें भी कलङ्कित होना पड़ेगा। इसी से बहुत कुछ सोच समझ कर ससुराल आये हैं।

उर्वशी ने सोचा कि इतने दिन बाद उन्हें याद तो आई; शायद मेरी ओर से उनके हृदय में कुछ दया आई हो। मैं उन्हें कैसे समझाऊँ कि मेरे हृदय में कितनी यातना हो रही है। मुझ से वे एक बार कह दें कि क्षमा किया। एक बार मुझे

और ले चलें। अब मैं उनकी चरण सेवा करके ही अपने को कृतार्थ समझूँगी। मान लिया कि मैंने सैकड़ों अपराध किये, किन्तु इस निरपराध का क्या किया है? क्या इसे भी वे अपने पास न रक्खेंगे? क्यों क्या पिता में माता से कम स्नेह होता है? इसे देखेंगे तो शायद वे छोड़ कर न जायेंगे।

उर्वशी के मरे शरीर में जान आ गई। सैकड़ों आशाओं से उसका हृदय फिर भर उठा।

सोलहवां परिच्छेद

निराशा

बड़ी आशा से उर्वशी का दिन बीता। संध्या समय सूर्य्य मेघमाला में छिप गये। ऊँचे ऊँचे वृक्षों की चोटियों पर अस्त होते हुए सूर्य्य की लालिमा दौड़ गई। चारो ओर धुँधला रंग छा गया। आकाश में अनगिनती चिराग जल उठे, मानों संध्या देवी के अंचल में टके सैकड़ों हीरे जगमगा उठे। संध्या की आरती के साथ शंख और घंटे बज उठे।

संध्या के बाद ही रात आई। किन्तु उर्वशी के लिये मानो समय बीतता ही नहीं। चाहे कोई अधीर हो या न हो, समय ठहरता भी नहीं और किसी के लिये शीघ्रता से भागता भी नहीं; वह अपने नियम से ही चलता है।

रात को सोने की कोठरी में पहुँच उर्वशी स्वामी के आने की राह देखने लगी। सोते हुए बच्चे का चेहरा देख उसके हृदय

से आनन्द की लहरें उठने लगीं। उर्वशी सोचने लगी कि इस बच्चे को देख कर उनका क्रोध अवश्य शान्त होगा।

सीढ़ी पर जूते का शब्द सुनाई दिया। धीरे धीरे राजेश्वर कोठरी में आये। उर्वशी ने उठ कर स्वामी को प्रणाम किया। इसी के साथ साथ राजेश्वर को जान पड़ा मानों उनके पैर पर दो बूँद आँसू टपक पड़े।

उर्वशी उठी; उसे याद आया कि जब वह पहले प्रणाम करने जाती थी तब राजेश्वर हट जाते या उसे ही हटा देते थे, इससे उर्वशी की आशा बढ़ी। उर्वशी ने कुशल पूछने की इच्छा की, किन्तु मारे रुलाई के उसकी आवाज बन्द हो गई। इसके बाद उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

इतनी देर में राजेश्वर धीरे धीरे आगे बढ़ चारपाई पर बैठ गये। तब अंचल से आँसू पोछ कर उर्वशी ने उनसे कहा,—"अच्छे हो?" इन शब्दों में उर्वशी के हृदय की जो वेदना प्रकट हुई, उसे राजेश्वर समझ न सके।

राजेश्वर ने जवाब दिया,—"एक तरह से अच्छा ही हूँ।"

राजेश्वर को उर्वशी के कुशल समाचार पूछने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं दी। उर्वशी ने स्वामी के मुँह की ओर देखा—देखा उस चेहरे पर चिढ़ का निशान चिरस्थायी हो गया है। उसने बड़ी आशा से पुत्र को दोनों हाथों पर उठा स्वामी से कहा, "जरा इसे देखो।"

राजेश्वर ने कहा—"किसे देखूँ?"

"अपने इस बच्चे को! मैंने दोष किया है, मुझे लातों से

मारो, किन्तु यह बच्चा तुम्हारी सन्तान है। इस पर क्रोध न करो।"

"तुमसे किसने कहा कि मैं क्रोध करता हूँ? मैंने तो कहा भी नहीं। मुझे क्रोध करने का अधिकार ही क्या है?"

राजेश्वर ने जिस मतलब से बात कही उसको अभी उर्वशी समझ न सकी। राजेश्वर जिस तरह बातें कर रहे थे उसी तरह उर्वशी भी बोल न सकी। राजेश्वर के हृदय में जो सन्देह था उसे उर्वशी समझ ही नहीं सकी।

उर्वशी ने कहा,—"तुमने तो एक बार इसे पूछा भी नहीं? इतने दिनों में क्या एक बार भी इसे देखने की फुरसत नहीं मिली?"

राजेश्वर कुछ कहते कहते चुप रह गये।

उर्वशी ने फिर कहा,—"इलाहाबाद गये; लेकिन जरा सा इसे देखने न आये?"

हृदय में बड़ी आशा रहने के कारण ही आज उर्वशी इस तरह बात चीत कर रही थी। उन चिट्ठियों के पाने के बाद से राजेश्वर ने उसे इस तरह बोलने का मौका ही नहीं दिया था।

इसके जबाव में राजेश्वर ने कहा,—"इलाहाबाद बहुतेरे काम थे, इसी से वहाँ गया।"

उर्वशी ने कहा,—"इलाहाबाद में जरूरी काम था, इसे देखना जरूरी काम नहीं था!! इसे देखने के लिये तुम्हारे हृदय में जरा भी लालसा नहीं हुई?

राजेश्वर फिर कुछ कहना चाहते थे, किन्तु न जाने क्या सोच कर चुप रह गये।

उर्वशी ने कहा,—"जरा इसकी ओर देखो।"

राजेश्वर०। देख लिया।

उर्वशी०। इसे देख प्यार करने को जी नहीं चाहता ?

राजेश्वर ने कोई जवाब न दिया। उर्वशी पुत्र को स्वामी की गोद में देने चली किन्तु राजेश्वर हट गये।

विस्मय के साथ उर्वशी ने देखा कि उनकी आँखों में क्रोध और चेहरे पर घृणा झलक रही है। उर्वशी का हृदय काँप उठा।

घृणा के स्वर में राजेश्वर ने कहा,—"न जाने किसकी सन्तान, मैं क्यों गोद में लेने लगा ?"

अब उर्वशी राजेश्वर की बातों का मतलब समझी। उसके हृदय पर वज्र गिर पड़ा। उर्वशी को रोने की इच्छा हुई, किन्तु आँसू न निकले।

उर्वशी की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। इतने दिन तक सन्तान का मुँह देख उसे बहुत आशा बँधी हुई थी। आशा का कोई कारण न होने पर भी सुन्दर के फूल की तरह आशा कर उसने अपने मन को समझा रक्खा था; किन्तु आज उसकी आशा निष्फल हो गई। जैसे बहुत दिनों में सींच कर तय्यार किये सामान को नदी की एक ही लहर बहा ले जाती है, वैसे ही स्वामी के एक ही मर्मभेदी वचन से उर्वशी का आशा नष्ट हो हो गई। उर्वशी सिसक सिसक कर रोने लगी।

उर्वशी तो रोने लगी, किन्तु राजेश्वर एक गहरा सपन

बोल बहुत ही प्रसन्न हुए। वह सोचने लगे कि बदला लेने में ही सुख है; जिसने अपने को तकलीफ पहुँचाई, उसे तकलीफ देना ही मनुष्य का धर्म है; क्षमा कापुरुष का काम है। मन के उच्च विचारों के खो जाने पर किसी कुकर्म को कर मनुष्य जैसे अपने मन को समझाता है, वैसा ही राजेश्वर ने किया। वे उर्वशी को रोते देख सोचने लगे,—फिर वही आंसू? स्त्रियों के आंसू का कोई मूल्य ही नहीं। इसी आंसू ने तो मुझे अन्धा बना रक्खा था, इसी आंसू के मोह ने मुझे मोहित कर लिया था। स्त्रियों के आंसू! चरित्र हीना के आंसू! यह आंसु केवल छल मात्र है, मूर्खों को समझाने के लिये है; दुर्बल चित्त के मनुष्यों को मोहित करने के लिये है, अब मैं इससे फॅस नहीं सकता। इतने दिन जो भूल हुई, वही बहुत हुई।

इधर मारे चिन्ता के उर्वशी की छाती फटने लगी। वह सोचने लगी कि आज बाप के मन में जो सन्देह हुआ हो सकता है किएक दिन लडके के मन में भी वही सन्देह हो। वह भी सोच सकता है कि मैं किसकी संतान हूं? मेरा जीवन शुरू से आखीर तक रहस्यमय है, यदि मैं मर जाऊं तो किसी का क्या बिगड़ेगा?

किन्तु वाहरी आशा! तू निराश करके भी मनुष्य का पिंड छोड़ती। इतना होने पर भी उर्वशी ने सोचा कि एकबार और चेष्टा कर देखूं। यह सोच बच्चे को दूसरी चारपाई पर सुला उर्वशी पागल की तरह दौड़ कर अपने पति के पैरों पर गिर पड़ी।

राजेश्वर ने शीघ्रता से पैर हटा लिया, मानो उनके पैरो पर विषधर ने अपना फन रख दिया हो।

उर्वशी का सिर खट से भूमि पर जा गिरा—किन्तु उस समय उसके मन में इतनी चोट लगी थी कि बाहरी चोट कुछ भी जान न पड़ी। उसने उठ कर फिर अंचल से मुंह छिपा लिया। इसके बाद उसने राजेश्वर से कहा,—"मुझे जो चोट पहुंची है, उसे मैं तुम्हें समझा नहीं सकती। किन्तु अब मुझे क्षमा करो।"

राजेश्वर केवल घृणा के साथ हँस दिये।

उर्वशी ने कहा,—"मैं और कुछ नहीं चाहती; क्योंकि मैं और किसी योग्य नहीं हूँ। केवल तुम्हारे चरण की सेवा कर सकने से ही सब कुछ पा जाऊँगी; मुझे अपने चरणों में स्थान दो।"

बड़े ही घृणा के स्वर में राजेश्वर ने कहा,—"इतनी भक्ति कब से हुई? मैं जानता हूँ कि अति भक्ति चोर का लक्षण है; मेरे आगे यह छल न चलेगा।"

उर्वशी फिर झुक कर पैरों पर गिरने चली, राजेश्वर हट गये; वह जमीन पर गिर पड़ी।

इसी समय उर्वशी का बच्चा जग कर रो उठा। उर्वशी से उसकी रुलाई सही न गई। उसने झपट कर बच्चे को गोद में उठा लिया—वह चुप हो गया। नहीं मालूम कि माता के स्पर्श में कौन सा जादू है; माता के छूते ही बच्चे रोना बन्द कर देते हैं।

बेदर्दी के साथ राजेश्वर ने उत्तर दिया,—"वह मेरा है ही कौन?"

उर्वशी ने कहा,—"मेरी बात पर तुम विश्वास करो या न

करो, अन्तर्यामी जानते हैं—यह तुम्हारा ही है। मैं तुमसे झूठ नहीं बोलती, मैंने मन से पाप किया है, किन्तु तन से अब तक तुम्हारी ही हूँ।"

राजेश्वर ने कोई जवाब नहीं दिया।

उर्वशी ने कहा,—"यदि तुम मुझे अपनी शरण में न लोगे तो मेरे लिये संसार में और कोई जगह भी नहीं है। तब यह बच्चा भूखा मरेगा—कलपेगा; लोग तुम्हें दोषी बतायेंगे।"

राजेश्वर बहुत कड़ा उत्तर देना चाहते थे, किन्तु न जाने क्या सोच चुप रह गये।

उर्वशी ने फिर कहा,—"मेरे पाप को भूल जाओ; मेरे पाप का प्रायश्चित्त इस बच्चे से न कराओ; बस, और मैं तुम से कुछ नहीं चाहती; इस निरीह बच्चे को अपनी गोद में स्थान दो। इसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

राजेश्वर ने कहा,—"मुझे जो करना है, वह करूंगा। मैं किसी की कोई सलाह सुनना नहीं चाहता।

उर्वशी ने कहा,—"अच्छा तो अब मैं मरूंगी। जब मेरे मर जाने का समाचार पाना तब मुझे क्षमा कर देना, क्योंकि तुम्हारे क्षमा न करने से मुझे नरक में भी स्थान न मिलेगा। अब तुम्हें मेरा पापी मुंह दिखाई न देगा, इसलिये आशीर्वाद दो कि दूसरे जन्म में मैं पुण्य करूँ और तुम्हारे चरण की सेवा पाऊं। बाकी रहा यह बच्चा;—विधाता ने इसके भाग्य में जैसा लिखा होगा वैसा होगा; मैं क्या करूं?"

राजेश्वर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उसके दूसरे दिन सास ससुर के बहुत रोकने पर भी राजेश्वर घर चले गये।

सत्रहवाँ परिच्छेद

जालसाजी

पूस महीने की सन्ध्या है। गाँव का कोलाहल बन्द होगया है। कभी कभी कहीं कहीं से कुत्तों के भूकने की आवाज सुनाई दे जाती है। इसी के साथ हवा से पत्तों की खड़खड़ाहट भी सुनाई देती है। गाँव की सन्नाटी और कच्ची सड़क से राजेश्वर अपनी जमींदारी के मकान में लौट रहे हैं। साथ में कई खेतिहर, एक कारिन्दा और हाथ में लालटेन लिये एक चपरासी है। राह के दोनों किनारे खेत हैं। चांद का टुकड़ा बहुत दूर बाँस की झांड़ी के पीछे से झांक रहा है। आकाश में बहुतेरे तारे जगमगा रहे हैं।

इधर राजेश्वर के हृदय में भी आशा जगमगा रही है। उन्होंने चलते चलते एक खेतिहर से कहा,—"महमूद! अच्छी तरह गवाही दे सकोगे न?"

महमूद०। भला हुजूर! मैं इतना भी न कह सकूंगा कि वह जमीन पहले मेरे बड़े चाचा के नाम थी, इसके बाद मेरे चचेरे बड़े भाई के हाथ आई, चचेरे भाई के मरने के बाद से मेरे नाम है और मैं हुजूर को मालगुजारी देता हूं।"

इनकी प्रजा में केवल एक दलई भगत गवाही देने से कुछ हिचक रहा था। दलई की उम्र साठ के ऊपर थी। किन्तु दरिद्रा को भय दिखाना कोई बडी बात नहीं। भय दिखाने पर उसने विचार किया कि यदि गवाही न दूंगा, तो इस बुढ़ौती में गांव छोड़ना पड़ेगा। वृद्ध ने आंखों में आंसू भर गवाही देना स्वीकार कर लिया। किन्तु इसके बाद ही उसने परमेश्वर से हाथ जोड़ कहा,—"प्रभो! तुम्हीं जानने हो कि किस सङ्कट में पड करमैं यह पाप करने जा रहा हूं।"

राजेश्वर के मुकद्दमे की तैयारी में कोई बाधा नहीं पड़ी। उन्हों ने प्रजा गण को तीन वर्ष पहले तक का दाखिला बना कर दे दिया था। वे लोग गवाही देंगे कि बहुत दिन से सब के सब राजेश्वर को ही मालगुजारी देते चले आते हैं। इसमें दूसरे किसी जमीदार का जरा भी हक नहीं।

आज कल किसी तरह का पाप करने में राजेश्वर कोई आपत्ति नहीं करने। अपनी भलाई के लिये वे सब कुछ करने को तैयार हैं। उस पर उर्वशी के व्यवहार से उनका यह अधःपतन और भी तेजी के साथ आगे बढ़ रहा है।

राजेश्वर का खयाल था कि संसार में सुख तो मिला ही नहीं। सुख की खोज में दुःख मिला, प्रेम के बदले में यातना मिली; जो चाहा, उसके विपरीत मिला। जब संसार मुझसे बुरा व्यवहार कर रहा है, तब मैं क्यों लोगों के साथ भला व्यवहार करूं? जहां तक हो, वही काम करना चाहिये जिससे ...हो। चाहे पाप से हो या और किसी राह से, ... मिलना चाहिये।

इसके बाद छावनी पर पहुंच कर राजेश्वर ने अपने गवाहों को रस पिलाया। तव राजेश्वर ने सन्दूक खोल हरेक गवाह के हाथ में दखीलदारी का एक एक कागज थमा दिया। वास्तव में यह सब कागज जाली थे।

राजेश्वर ने एक बहुत बड़ा जाल रचा था। राजेश्वर की थोड़ी सी जमींदारी थी। उनकी जमीन और दूसरे किसी जमींदार की जमीन के बीच में एक बहुत बड़ा ताल पड़ता था। अब वह ताल सूख गया है, केवल बरसात में थोड़ा पानी जमा हो जाता है। इस के बाद शरत् ऋतु आते आते सारा पानी सूख जाता और मट्टी में दरार फट जाते हैं। यह ताल दूसरे ही जमींदार का है। अब राजेश्वर उसे अपने दखल में ले आना चाहते हैं। राजेश्वर ने उस गांव के एक जालिया कारिन्दे को बुला कर उस जमीन के बारे में बहुतेरे जाली कागज बनवा डाले। इस के बाद वह सब कागजात अन्न को गुदाम में रख कर पुराने बनाये गये।

प्रजा तो सहज ही वश में आ गई। प्रजा जिस जमींदार की जमीन में रहती है, उसकी बात को कभी टाल नहीं सकती। उस पर लालच भी दी गई; गरीबों के लिये थोड़ी भी लालच बहुत है। किसी का खेत माफी कर देने, किसी को बिना सलामी लिये जमीन लिख देने और किसी की मालगुजारी घटा देने की लालच दे राजेश्वर ने अपना काम निकाल लिया। यहां यह भी कह देना चाहिये कि बहुत कम जमींदार ऐसे हैं जो काम निकल जाने पर अपनी बात पूरी किया करते हैं।

इनकी प्रजा में केवल एक दलई भगत गवाही देने से कुछ हिचक रहा था। दलई की उम्र साठ के ऊपर थी। किन्तु दरिद्रों को भय दिखाना कोई बड़ी बात नहीं। भय दिखाने पर उसने विचार किया कि यदि गवाही न दूंगा, तो इस बुढ़ौती में गांव छोड़ना पड़ेगा। वृद्ध ने आंखों में आंसू भर गवाही देना स्वीकार कर लिया। किन्तु इसके बाद ही उसने परमेश्वर से हाथ जोड़ कहा,—"प्रभो! तुम्हीं जानते हो कि किस सङ्कट में पड़ कर मैं यह पाप करने जा रहा हूं।"

राजेश्वर के मुकद्दमे की तैयारी में कोई बाधा नहीं पड़ी। उन्हों ने प्रजा गण को तीन वर्ष पहले तक का दाखिला बना कर दे दिया था। वे लोग गवाही देंगे कि बहुत दिन से सब के सब राजेश्वर को ही मालगुज़ारी देते चले आते हैं। इसमें दूसरे किसी जमीदार का ज़रा भी हक नहीं।

आज कल किसी तरह का पाप करने में राजेश्वर कोई आपत्ति नहीं करते। अपनी भलाई के लिये वे सब कुछ करने को तैयार हैं। उस पर उर्वशी के व्यवहार से उनका यह अधःपतन और भी तेजी के साथ आगे बढ़ रहा है।

राजेश्वर का खयाल था कि संसार में सुख तो मिला ही नहीं। सुख की खोज में दुःख मिला; प्रेम के बदले में यातना मिली, जो चाहा, उसके विपरीत मिला। जब संसार मुझसे बुरा व्यवहार कर रहा है, तब मैं क्यों लोगों के साथ भला व्यवहार करूं? जहां तक हो, वही काम करना चाहिये जिससे अपने को तृप्ति हो। चाहे पाप से हो या और किसी राह से, अपने को आनन्द मिलना चाहिये।

मनुष्य के मन की यह अवस्था बहुत ही भयानक है। इस अवस्था में मनुष्य पशु से भी अधिक अधम हो जाता है। पशु अपने स्वभाववश वैसा काम करता है; मनुष्य अपने विवेक को नष्ट कर वैसा करता है। इसी से मनुष्य इस अवस्था में पशु से भी अधिक हीन हो जाता है।

राजेश्वर ने जगत् से बदला लेने का सङ्कल्प किया है। उनकी समझ में यह नहीं आया कि वे अपना ही सर्वनाश कर रहे हैं, वे अपने ही आत्मसीरन को खो रहे हैं। उन्हें यह दिखाई ही नहीं देता था कि वे किस राह पर जा रहे हैं। वे क्रोध और अपमान से अन्धे हो रहे थे। इसी से उन्हें दिखाई नहीं दिया कि इससे उनका ही अधःपतन हो रहा है।

अट्ठारहवां परिच्छेद

उर्वशी का पत्र

पूस महीने का सवेरा है। कुहरे के परदे को फाड़ मुस्कुराती हुई सूर्य्य की किरणें जल और स्थल पर खेल रही हैं, गौवों और बैलों का झुण्ड ले चरवाहे खेत की ओर चले जा रहे हैं, कुल-बहुएँ इस समय नहा धो कर लौट रही हैं, गाँव के खपड़ों से आग का धुआँ निकल रहा है, वृक्षा पर बैठे पक्षी तरह तरह की बोली बोल रहे हैं।

जमींदारी छावनी की एक दालान में बैठे राजेश्वर किसी

हनुमान जिस तरह हाथ जोड़े खड़े दिखाई देते हैं; उसी भाव से एक खेतिहर बाबू के सामने बैठा है। हाथ पैर से बलिष्ठ खेतिहर बहुत ही करुण दृष्टि से राजेश्वर की ओर देख रहा है।

इस खेतिहर ने राजेश्वर से कुछ अन्न लिया था। असल और सूद मिला कर इस समय उतने अन्न का दूना हो गया है। उस अभागे में इतनी क्षमता नहीं जो वह उसे चुका सके। इसी से वह बाबू का दयापात्र बन रहा है।

खाता देख कर राजेश्वर ने कहा,—"अब कोई उपाय नहीं, दो दिन के भीतर कुल अन्न चुका न दोगे तो नालिश हो जायगी।"

खेतिहर जमीन पर दण्डवत हो बाबू के पैर पकड़ रोने लगा।

राजेश्वर ने कहा,—"मैं क्या कर सकता हूं? इस तरह मैं अपने रुपये छोड़ने लगूं तो जमींदारी ही खतम हो जाय।"

खेतिहर बहुत रोने और गिड़गिड़ाने लगा। अन्त में फैसला हुआ कि इस समय वह आढ़त देना चुका दे, बाकी सूद का भी सूद लगा कर अगले साल ले लिया जाय। इस के अलावा इस से कुछ नुकसानी भी ली जायगी। जैसे तैसे खेतिहर बेचारे ने सब कुछ स्वीकार किया।

जिस जमीन को राजेश्वर हजम करना चाहते हैं उसमें चना काटने को आज ही किसान आनेवाला था। दूसरे जमीं-दार की ओर से कुछ लठैत भी थे। इसलिये इसके बाद ही राजेश्वर ने कारिन्दे को बुला कर मौके पर दस लठैत बदमाश भेज दिये।

राजेश्वर बैठे रहे। कुछ और दिन चढ़ आया। इसी समय गांव का डाकिया हांफता हुआ आया और राजेश्वर के हाथ में एक चिट्ठी देकर चला गया।

पत्र की लिखावट पहिचानी हुई सी जान पड़ी। राजेश्वर की भौंहें सिकुड़ गईं। पत्र खोलने पर उर्वशी के हाथ की लिखी चिट्ठी निकली। राजेश्वर जैसे जैसे पढ़ने लगे, वैसे वैसे विस्मय से उनकी आंखें चमकने लगीं। उर्वशी ने लिखा है:—

"प्रियतम,

"तुमने जिसे चरण में भी स्थान नहीं दिया, उसके इस आखिरी पत्र को तो पढ़ लो। तुमने मुझे कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया, इसी से मैं अपने जीवन की सब बातें कह नहीं सकी। आज मैं कुछ भी न छिपाऊँगी, आज मृत्यु के किनारे खड़ी हो हृदय के बोझ को हलका करूंगी। जिस समय तुम्हें यह पत्र मिलेगा, उस समय मैं जीती न रहूँगी; मैं आज ही मरूंगी। मरने से पहले तुमसे सब बातें कहे देती हूं। तुमने मुझे चरण में स्थान नहीं दिया। किन्तु सिवा तुम्हारे चरण के मेरे लिये और स्थान ही कहां है?

मेरे बड़े भाई बरेली में पढ़ते थे। एक बार बड़े दिनों की छुट्टी में उन्हें बुखार आया। कुछ दिन दवा करने से वे अच्छे तो हो गये, लेकिन कमजोरी दूर न हुई। स्कूल खुलने पर वे फिर पढ़ने लगे; किन्तु कुछ ही दिन बाद फिर बीमार हुए। इस बार की बीमारी में भाई का उठना बैठना भी छूट गया; मानो बिछौने से सट गये। मा रोने लगीं। भाई उन्हें बहुत समझाते थे किन्तु

माता का मन किसी तरह मानता न था; मा केवल रोया ही करती थीं। पिताजी सब तरह से खर्च कर बड़े बड़े डाक्टरों की दवा कराने लगे और हम सब की सब भाई की सेवा करने लगीं।

उस समय भाई के एक सहपाठी मित्र भी आया करते थे। वे जब तक बैठे रहते, तब तक भाई का चित्त कुछ प्रसन्न रहता था। वे तुम्हारे भतीजे माधव थे। उस विपद् के समय वे ठीक अपने घर की तरह व्यवहार करते थे। भाई की इच्छा थी कि उन्हीं के साथ मेरा विवाह हो। मौत के बिस्तर पर पड़े पड़े भाई ने उनसे मेरे विवाह को बात चीत भी पक्की कर ली थी।

रोगी भाई की सेवा में नित्य मेरी और माधव की भेंट हो जाया करती थी। भाई उनके थे ही कौन ?—केवल साथ के पढ़नेवाले थे। भाई के साथ पढ़ने वाले और भी बहुतेरे साथी थे किन्तु उनमें कोई एक बार भी उन्हें देखने न आया। माधव मेरे भाई की इतनी सेवा करते थे जितनी हम सब भी नहीं कर सकती थीं। माधव के इस महत्व को देख मैं मुग्ध हो गई। उनका सद्गुण मेरे बालिका हृदय पर प्रभाव उत्पन्न करने लगा।

इसी बीच में एक दिन मैंने सुना, भाई धीरे धीरे मा से कह रहे थे,—"मां! मेरी बड़ी इच्छा है कि माधव से उर्वशी का विवाह हो जाय।"

मा ने कहा,—"तुम अच्छे तो हो, फिर देखा जायगा।"

भाई ने कहा,—"मैं बचूं या न बचूं; माधव से ही उर्वशी का विवाह करना।

मा ने कोई जवाब नहीं दिया; केवल अंचल से आंसू पोछ कर रह गईं।

भाई की बीमारी बढ़ने लगी। वे बहुत कमजोर हो गये। एक दिन मैंने सुना, भाई उनसे कह रहे हैं,—"माधव! तुम उर्वशी से विवाह करना।" माधव ने भी उनके सामने स्वीकार किया।

भाई की बहुत सेवा हुई, किन्तु कोई फल नहीं हुआ। भाई बचे नहीं। पहले शोक के घटने पर मैंने विश्वास किया कि भाई के अन्तिम अनुरोध को कोई टाल न सकेगा। उस समय मुझ बालिका के हृदय में जो विश्वास बँध गया था, वही मेरे सर्वनाश का कारण हुआ। हाय! उस समय यदि मैंने वह सब बातें न सुनी होतीं तो अच्छा था।

भाई के मर जाने पर मेरे पिता ने उनके अनुरोध की रक्षा के लिये बहुत चेष्टा की किन्तु कुछ भी न हुआ। माधव के बड़े भाई उस समय क्वारे थे, उन्हों ने प्रण किया था कि जब तक वे अपने परिवार के पालन लायक आमदनी न कर सकेंगे तब तक विवाह न करगे। रिवाज है कि बड़े का विवाह न होने से छोटे का विवाह हो ही नहीं सकता। माधव के माता पिता बड़े का विवाह किये विना बिचले का विवाह करने पर राजी नहीं हुए।

एक दिन माधव से मेरी मुलाकात हुई। उस दिन माता जी कहीं बाहर चली गई थीं। माधव ने मुझ से कहा,—"जीवन की सारी आशायें इतने दिन बाद चूर चूर हो गईं। हिन्दू के घर बड़े लड़के का ही आदर है। मेरा अभाग्य, जो मैं हिन्दू के घर बड़ा लड़का होकर उत्पन्न नहीं हुआ। इस लिये अब तुम

मुझे भूल जाओ। इतने बड़े संसार में मेरी चिन्ता करने को कोई नहीं है। मैं किसी को दोष नहीं देता। सारा दोष मेरे भाग्य का है।"

भाई के मरने के बाद अपने जीवन में मुझे यह दूसरा शोक हुआ।

इसके कुछ दिन बाद हमारे माता पिता तीर्थ यात्रा के लिये निकले। माता अकसर मेरे पिता से कहा करती थीं, "लड़की बड़ी हो गई, कोई फिक्र करो।"

हरिद्वार में तुम से और मेरे पिता से मुलाकात हुई। तुम्हारे साथ मेरा विवाह ठीक हो गया। मेरे हृदय में नरक जैसी यातना होने लगी। इस के बाद तुम बनारस गये और हम लोग बरेली आये। इस तरह हमारा तुम्हारा विवाह हो गया।"

इतना पढ़ने के बाद लठचन्द खेत से लौट कर आ पहुँचे। राजेश्वर चिट्ठी रख कर उन सब की बातें सुनने लगे। उन लोगों ने समाचार दिया कि दूसरे जमींदार के कोई आदमी मौके पर नहीं आये। खेत की फसल कट कर गाड़ी पर लादी गई, गाड़ी रवाना होने पर हमलोग लौट आये।

राजेश्वर यह सोच कर प्रसन्न हुए कि बाजी मार ली।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

पत्र की समाप्ति

इसके बाद राजेश्वर फिर उर्वशी का पत्र पढ़ने लगे।

"विवाह के बाद अपने दुःखित हृदय को लेकर मैं ससुराल

आई। आने पर देखा कि मेरे भाग्य की लिखावट चुपके चुपके मेरे साथ चल रही है। देखा कि यहां माधव मौजूद है।

यह भी मेरे भाग्य का ही फेर था। मालूम हो गया कि माधव का और मेरा कौन सा नाता है। माधव को देखने से मुझे पिता के घर की भी चिन्ता भूल गई। मैं रोई नहीं इसी से तुम्हारी बूढ़ी मा ने कहा,—"सयानी लड़की है न, आते ही अपना घर पहचान गई है।"

सास ने मुझे माधव आदि से बात चीत करने का आज्ञा दे दी। किन्तु मैं माधव से कुछ कह न सकी। मेरी आंखों में आंसू आ गये; शायद उन आंसुओं को देख कर ही माधव किसी काम के बहाने वहां से चले गये।

अपने पिता के घर लौट जाने पर मुझे माधव की लिखी एक चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था कि—"जब भाग्य का लेख ही कुछ और है, जब बीती बातें केवल स्वप्न मात्र ही रह गई हैं, तब तुम पिछली बातों को भूल जाओ, अब उन बातों का हाल किसी को मालूम न होने पाये।"

इस चिट्ठी को पढ़ कर मैं बहुत रोई। इसी समय से मैंने माधव को पत्र लिखना आरंभ किया।

तुम्हें मैं जो पत्र लिखती थी, वह सब ऊपर के दिल से। उस समय से माधव को देखने के लिये मेरी बहुत इच्छा होने लगी। नहीं जानती कि मेरे हृदय में ऐसा खिंचाव क्यों कर पैदा हो गया।

इसके बाद मैं ससुराल आई। अब मैंने पहचाना कि ससु-

राल किसे कहते हैं। पहली बार बहुओं का केवल आदर होता है वह आदर इतना बढ़ा चढ़ा होता है कि उसके आगे स्वर्ग भी भूल जाता है। किन्तु दूसरी बार ससुराल आने पर मानों मैं गृहस्थी में आई। इस बार मेरे भाग्य से उठते बैठते तिरस्कार होने लगा। सभी हालत में कुछ न कुछ सुनना पड़ा। सास महारानी की जुबान कभी कभी मेरे नाम से फिसल मेरे निरपराध मा बाप पर भी गालियों की बौछार छोड़ने लगी। मैं सोचती थी कि क्या सभी स्त्रियाँ ससुराल में इसी तरह आदर पाती हैं?

तब नहीं समझी थी, किन्तु अब समझ गई हूँ; कि कितनी ही स्त्रियाँ इस प्रकार की यातना में सड़ती हुई गृहस्थी में पड़ी रहती हैं सो क्यों? उन्हें जो रत्न मिलता है उसके आगे सास की गाली और ननद के ताने तुच्छ जान पड़ते हैं। वह सब स्वामी के प्रेम रूपी रत्न को पाती हैं। किन्तु उस अमूल्य रत्न को मैं खो चुकी थी. इसी से आज मरने के समय भी मैं उस रत्न के लिये रो रही हूँ। पहले ही समझ गई होती तो मेरे जीवन की यह दुर्दशा न होती। यदि मैं भी तुम्हारा प्रेम पाती, तो सब कुछ सह लेती। मैंने इस प्रेम का अपमान किया, इसी से आज तुम्हारे चरण की धूल अपने शिर से लगा कर मरने न पाई। जो रमणी पति प्रेम को नहीं पाती, वह बहुत दुःखी होती है; और जो उसे पाकर भी अपने कर्म दोष से गँवा बैठती है, वह? उसके लिए कौन सा नरक बना है?

तुम मुझे चाहते थे और मैं पापिनी तुमसे घृणा करती थी।

उस समय मैं तुम्हारे प्रेम रूपी जगत के पवित्र रत्न को पहिचानती ही न थी। उस समय मैं आँख रहते अंधी थी।

आज मैं तुमसे कुछ भी न छिपाऊँगी। क्योंकि हृदय के इस बोझ को हलका न कर सकने से मैं मर भी न सकूँगी। यदि तुम्हारे आगे मैं अपने दोष न कहूँगी, तो मेरे पाप का प्रायश्चित न होगा।

मेरे पापी मन में उस समय और एक पाप विचार उत्पन्न हुआ। वह यह कि माधव यहाँ क्यो न आयेगा? यह तो उसका घर है; वह यदि यहाँ आवेगा तो कोई कुछ भी खयाल न करेगा, तब वह एक बार क्यों न आये? मैंने माधव को आने के लिये पत्र लिखा। किन्तु माधव ने पत्र का कोई जवाब नहीं दिया। मैंने फिर लिखा किन्तु फिर भी कोई उत्तर न मिला। मैंने फिर पत्र लिख कर बुलाया। इस बार माधव आया।

मुझसे मुलाकात होने पर माधव ने कहा,—"अब भाग्य की लिखावट ही और है तब पहले की बातें भूल जाओ।" उसने मुझे समझाया कि इस से दोनों ही का सर्वनाश हो सकता है। तब भी मैं नहीं समझी। यदि समझ जाती तो आज तुम्हारे प्रेम की वर्षा से मेरा उजड़ा हुआ हृदय शीतल होता। मेरा जीवन सार्थक होता। इसके बाद माधव चला गया।

मैं अभागिनी समझ न सकी; फिर माधव को पत्र लिखने लगी। माधव ने पत्र का कोई जवाब नहीं दिया। मैंने उसके पास अपने नाम के लिफाफे भेज दिये; मतलब यह कि यदि वह पत्र किसी के हाथ पड़ेगा, तो स्त्री की लिखावट देख वह

उस पत्र को मेरे घर का पत्र समझेगा। कई पत्र लिखने के बाद माधव ने एक पत्र का जवाब दिया। उसने उस पत्र में भी वही बात लिखी,—"पहले की बातें भूल जाओ!" मैंने फिर कई पत्र लिखे, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला।

कई पत्र लिखने के बाद फिर जवाब मिला। माधव ने फिर लिखा,—"वह सब बातें भूल जाओ।" माधव ने लिखा कि "हमारा और तुम्हारा ऐसा सोचना भी पाप है।" हाय, यदि मैं तब भी समझ जाती तो आज इस ज्वाला से जलना न पड़ता। आज आत्महत्या और पुत्र हत्या करना न पड़ता।

पिता के घर जाकर मैंने फिर माधव को पत्र लिखा। उस का जवाब माधव ने मेरे पिता के घर नहीं भेजा। वह पत्र तुम्हें मिला,—मेरे सर्वनाश की आग जल उठी। मेरे पाप के प्रायश्चित का समय समीप आ गया।

उसी समय कभी कभी मेरे मन में आता था कि मैं यह क्या कर रही हूं? कभी कभी मैं सोचती थी कि पति के गहरे प्रेम के बदले में मैं घृणा दे रही हूं। ऐसा क्यों कर रही हूं? स्त्री हो कर जीवन में ऐसे पाप के बदले मैं पति के प्रेम राज्य में क्यों नहीं लौट जाती?

इसके बाद तुम मुझे मेरे पिता के घर से अपने घर ले आये। तुमने मेरे सामने वह सब पत्र रख दिये, मैंने उस सब चिट्ठियों को जला दिया; उसी के साथ साथ मेरे हृदय का भ्रम भी दूर हो गया। इतने दिन बाद अन्धे को आँखें मिलीं।

तुम्हारे दिये पत्रों के साथ साथ मैंने और भी कितने ही पत्र

जला डाले थे। एक दिन मैंने वही सब पत्र दिखा कर तुम्हें समझा लिया था कि वह सब मैंने तुम्हारे ही लिये लिखे हैं, किन्तु वास्तव में यह बात न थी। जब मैं माधव को पत्र लिखने बैठती थी, तब किसी तरह भी अपने मनोभावों को प्रकट नहीं कर पाती थी; हृदय की व्याकुलता शब्दों में प्रकट नहीं होती थी। इसी से पत्र लिख जाने पर वह मुझे पसन्द न आता था। कई चिट्ठियां लिखने के बाद जो मेरे मन को अच्छी जान पड़ती, उसे मैं भेज देती थी। बाकी बची चिट्ठियां उठाकर रख देती थी; कितनी ही चिट्ठियां जला भी देती थी। उस दिन ऐसी ही चिट्ठियों को दिखा कर मैंने तुम्हें धोखा दिया था।

अंधे को आंखें मिलीं। सोच कर देखा कि सिवा तुम्हारे आश्रय के और कहीं मेरे खड़े होने को भी स्थान नहीं है। इतनी दूर निकल आने पर मुझे समझ हुई कि मैंने यह क्या किया। मैंने अपनी मनोवृत्तियों को दबा क्यों नहीं लिया। मैंने क्यो स्वयं अपना सर्वनाश कर डाला। हाय, तुम्हें भी यातना पहुंचाई और स्वयं भी उसी में जल मरी! हृदय की उस यातना को मैं भाषा में प्रकट कर नहीं सकती; मैं दिन रात जलने लगी। इस से मुझे जरा भी शान्ति नहीं मिली। मुंह खोल कर तुम से क्षमा भी न मांग सकी। खयाल आया कि किस मुंह से तुमसे क्षमा मांगूं ? कैसे तुम्हें विश्वास दिलाऊं कि मेरे मन के भाव बिलकुल ही बदल गये हैं ? क्या तुम कभी विश्वास करते ?

किन्तु तुम मेरे स्वामी हो,—इस जगत में तुम्हीं मेरे

आराध्य देवता हो; यह बताओ कि तुमने भी मेरी उन्नति के लिये कुछ किया था? मेरी उन्नति और अवनति पर ध्यान रखना क्या तुम्हारा धर्म्म न था? मेरी भलाई या बुराई के बारे में कभी तुमने मुझे समझाने की चेष्टा की थी? तुमने कभी मुझे मेरे कर्त्तव्य का उपदेश नहीं दिया, कुछ भी नहीं सिखाया। किन्तु फिर भी तुम मुझ से मेरे कर्त्तव्य की आशा रखते थे। तब तुम ने मुझसे विवाह नहीं किया था, मेरे बाहु, नयन, अधर और इस शरीर से विवाह किया था। इसी से तुमने मेरी उन्नति के बारे में कुछ भी नहीं किया।

इसके बाद मैं अपने पिता के घर चली आई। मैं उस समय की अपने हृदय की यातना तुम्हें कैसे समझाऊं? यदि तुम एक बार क्षमा कर देते, यदि तुम एकबार मेरी ओर कृपादृष्टि करते, तो मेरे जीवन की सारी जलन दूर हो जाती, मेरे जीवन की धारा नई राह से बहने लग जाती।

अब मैंने खयाल किया कि मैं किस आशा पर जी रही हूं? किन्तु उस समय तक कुछ भी समझी नहीं थी। उस समय सोचती थी कि मैं मरूँ तो मरू; तुम्हारी सन्तान को मुझे मारने का क्या अधिकार है? मैं सन्तान की हत्या क्यों करूँ?

इसके बाद मैं एक दूसरे ही माया बन्धन में जकड़ गई। तुम्हें छोड़ कर जाने का जो कष्ट था, उसे मैंने मंजूर कर लिया; किन्तु इस बच्चे को कैसे छोड़ कर चली जाती? फिर मैं आशा के नशे से मतवाली हुई, सोचने लगी कि तब नहीं तो अब तो तुम मुझे चरण में स्थान दोगे ही। इस बच्चे को देख तुम

बिना प्यार किये कैसे रह सकते हो ? तुम इसे प्यार करोगे, इसी से मेरा हृदय शीतल हो जायगा। फिर मैं आशा से जीने लगी।

आशा ही में कुछ दिन बीत गये। तुम मेरे पिता के घर आये। मैं सोचने लगी कि अब मेरा सारा दुःख दूर हो जायगा। बड़ी आशा से मैं तुम्हारी गोद मे तुम्हारे बच्चे को देने गई। तुमने जो जवाब दिया, उसके बदले एक छुरी क्यों न मार दी?

तुम चले गये। मैंने समझ लिया कि अब मेरे खड़े होने को कहीं कोई स्थान नहीं। मौत के सिवा मेरे लिये और कोई गति नहीं। किन्तु तुम्हारा यह बच्चा? तुम मानो या न मानो, मैं मरने के समय तुमसे झूठ नहीं बोलती—अन्तर्यामी भगवान जानते हैं, यह बच्चा तुम्हारा है। किन्तु तुमने इस अभागिनी की बात पर विश्वास नहीं किया।

जब तुम मेरी बात का विश्वास ही न करोगे, तब मैं इस बच्चे को किसके लिये छोड़ जाऊँ? जगत् में इसका है ही कौन? पिता के रहते भी यह अनाथ है। या तो कुसेवा में पड़ कर लड़का मर ही जायगा, या बड़े होने पर तुम्हारी ही तरह अविश्वास कर मुझे गालियाँ देगा। जब तुमने इसे ग्रहण नहीं किया तब मैं इसे कहाँ छोड़ जाऊँ? मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगी। भगवान ही जानते हैं कि माता होकर क्यों अपने बच्चे की हत्या कर रही हूँ। आज इतना लिखने के बाद विष पीकर मैं अपने हृदय की ज्वाला बुझाऊँगी।

आज मरने के समय मेरे सब अपराधों को भूल मुझे क्षमा

करो। तुम क्षमा न करोगे तो मुझे नरक में भी स्थान न मिलेगा। आशीर्वाद दो कि दूसरे जन्म में मैं तुम्हारे चरण की सेवा कर कृतार्थ हो सकूँ।

तुम्हारी अभागिनी दासी—
"उर्वशी।"

राजेश्वर ने चिट्ठी रख दी; मानो उनके हृदय का भार उतर गया। किन्तु उसी समय उनके हृदय के कोने में कुछ पीड़ा भी जान पड़ी; मानो कुछ चोट सी लग गई।

किसी मनुष्य का जीवन! मनुष्य चाहे कितना ही बड़ा पिशाच क्यों न हो, किसी के जीवन नष्ट होने के खयाल से उसका चित्त विचलित हुए बिना रह नहीं सकता। इसी से आज राजेश्वर के हृदय में भी कुछ थोड़ी पीडा जान पड़ी। मनुष्य का कितना ही अधःपतन क्यों न हो गया हो, क्रोध लोभ या मोह से उसकी मनोवृत्तियां छिप ही क्यों न गई हो, मनुष्य की मनुष्यता कुछ न कुछ रह ही जाती है। नहीं तो खूनी डाकुओं में भी कभी कभी दया की चर्चा सुनाई न देती। वह दया डाकुओं के हृदय में भी जड़ित रहती है, वे नरघातक होते हैं किन्तु फिर भी मनुष्य के सभी गुण उनमें मौजूद रहते हैं।

राजेश्वर ने चिन्ता छोड़ स्नान किया, भोजन किया, कमरे में जाकर लेट रहे। किन्तु अपनी इच्छा के विरुद्ध होने पर भी उर्वशी की चिन्ता को वह हृदय से निकाल न सके। राजेश्वर चाहे जैसे ही हो, हैं तो मनुष्य ही। इसीसे वह उसकी चिन्ता को दूर कर न सके। अब चाहे जो हो, एक समय वह भी था जब